प्रकृति ही ईश्वर की अभिव्यक्ति है
इसकी सम्पूर्णता में आनन्द की युक्ति है।

छेदीलाल सिंह

प्रकृति ही ईश्वर की अभिव्यक्ति है
इसकी सम्पूर्णता में आनन्द की युक्ति है।

छेदीलाल सिंह

श्रीमती पंचदेवी द्विवेदी

श्री रामसकल द्विवेदी

श्रीमती पंचदेवी द्विवेदी, श्री रामसकल द्विवेदी निवासी ताला की धर्मानुरागी भार्या थीं, वह अत्यन्त विनम्र, अनुशासन प्रिय, संघर्षशील एवं कर्मठ थीं, वह बहुत समझदार , आदर्श गृहलक्ष्मी थीं, वह परदुःखकातर, उदार, दूरद्दष्टा थीं , दरवाजे पर आये हुये अतिथि को वह देवतुल्य समझती थीं, वह घर की अप्रतिम शोभा थीं, पड़ोसियों की विश्वसनीय सम्बल थीं, परिवार से सम्बन्ध रखने वालों एवं सहायकों के लिये वह ममतामयी करुणावान माता के रूप में समाद्दत रहीं, दिव्य गुणों से अलंकृत वह देवी दिनांक 31.5.2005 ई. को इस भौमिक संसार के पार चली गईं, उनके दिव्य गुणों की स्मृति में इस कृति का प्रकाशन श्री रामसकल द्विवेदी जी ने किया क्योंकि इस कृति के सृजन के पीछे उनके सुयोग्य पुत्रों का ही आग्रह, अनुरोध था ; अभ्यर्थना थी।

उनके पंचतत्व में विलीन हो जाने के बाद भी उनके सद्गुणों की सुगन्धि उनके आवासीय परिसर में अब भी व्याप्त है।

ईश्वर उन्हें सद्गति प्रदान करें।

छेदीलाल सिंह

मातृपितृ भक्त श्री शेषाशक्तिधर द्विवेदी(ज्येठ पुत्र)

बांधवगढ़

(बान्धवगढ़ का इतिहास)
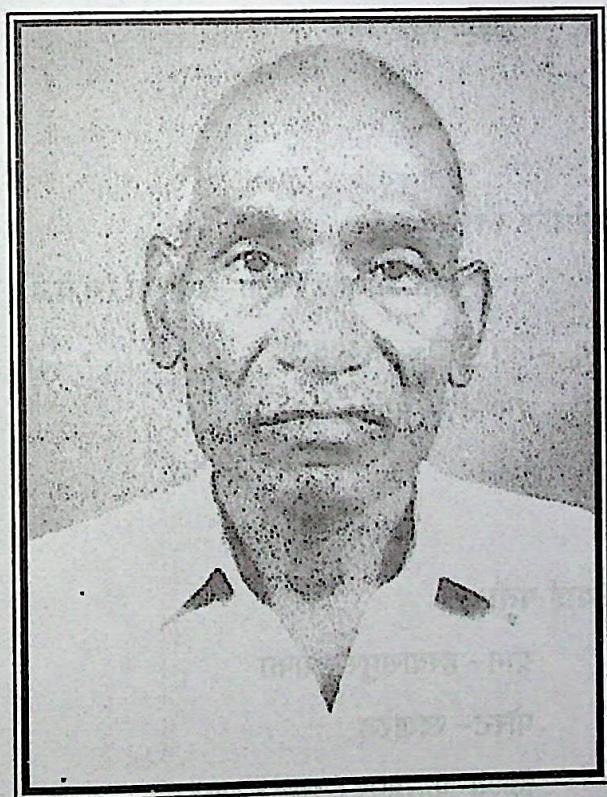
लेखक :- सी.एल. सिंह
अवकाश प्राप्त प्राचार्य
एम0ए0, बी0एड0

स्थान-इन्द्रकुंज मानपुर

संस्करण :- प्रथम वार- 2009

प्रकाशन तिथि:- नवम्बर 2009

प्रकाशक:- श्री रामसकल द्विवेदी

ताला (बान्धवगढ़) जिला- उमरिया (म.प्र.)

सहयोग राशि- अस्सी रुपये मात्र

लेखक का वर्तमान पता:-

ग्राम पोस्ट-मानुपर, जिला-उमरिया (म.प्र.)

पिन कोड- 484665

मो0 नं0- 9981617525

लेखक का स्थाई पता:-

ग्राम- हरदासपुर सराफा

पोस्ट- खखरेड़

जिला-फतेहपुर (उत्तर प्रदेश)

-: मुद्रक :-

श्री शिव प्रेस मानपुर

जिला-उमरिया (म.प्र.) फोन नं.- (07627) 266207

अपनी बात

विश्व के नक्शे में बान्धवगढ़ अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का पर्यटन स्थल बन गया है। पिछले कुछ वर्षों से इसका तेजी से विकास हुआ है। पर्यटन की दृष्टि से यहाँ विकास दिनों दिन तेजगति पकड़ता जा रहा है।

बान्धवगढ़ अनादिकाल से वन्य प्राणियों के लिये आदर्श शरण स्थल रहा है। यहाँ शेर बड़ी संख्या में प्रारम्भ से ही रहते रहे हैं। वर्तमान में जंगलों के घनत्व मे कभी आने एवं उनके निरन्तर सिकुड़ते जाने तथा पर्यावरणीय असन्तुलन उत्पन्न होने के कारण जहां एक ओर वन्यप्राणी संकट में हो गये हैं, वहीं अनेक प्रजातियॉ अपना अस्तित्व सदैव के लिये समाप्त करती जा रहीं हैं। यही स्थिति शनै: शनै: जंगल के राजा शेर की भी होने जा रही है। लेकिन शासन के विशेष प्रयास के कारण इनके सुरक्षा की उम्मीद बन गयी है , इनके सुरक्षा की व्यवस्था की जा रही है, वे सुरक्षित किये जा रहे हैं। अब कानून द्वारा इनके शिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। इनके प्राकृतिक आवास की सुरक्षा की जा रही है। अन्य वन्य प्राणियों एवं पक्षियों के शिकार पर भी कानूनी रोक है। लेकिन जनसंख्या और औद्योगिकीकरण का दबाव इतना अधिक बढ़ गया है, बढ़ता जा रहा है कि वन्य प्राणी बड़ीं विषम और संकट की स्थिति में हो गये हैं। इनकी सुरक्षा का दायित्व हम सबका है।

मानव ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। मानव संसार के समस्त प्राणियों का सिरमौर है। अत: उसका परम नैतिक दायित्व है कि वह ईश्वर की इस अद्भुत सृष्टि को सॅभालकर रखे, उसकी सुरक्षा करे, उसके बचाने का हर प्रकार से प्रयास करे क्योंकि प्रकृति, पर्यावरण से मानव का अटूट सम्बन्ध है। मानव उसके विनाश से स्वयं अपना विनाश कर लेगा, उसके विकास और स्वस्थ पर्यावरण से मानव अपने जीवन की सुरक्षा कर सकेगा।

प्रकृति की गोद मे ही हमारे पूर्वजों का जीवन बीता है। उसी की गोद में रहकर उसने विकास के सोपान चढ़े हैं और आज प्रगति की इतनी ऊँचाईयाँ प्राप्त की है, अत: उसे अपनी प्रकृति मॉ की देखभाल और संभाल के प्रति सदैव सक्रिय, सचेष्ट एवं संवेदनशील रहना चाहिये।

"बान्धवगढ़" को "राष्ट्रीय उद्यान पार्क " का दर्जा प्राप्त है, वन्य प्राणियों को निर्भय होकर रहने-विचरने के लिये प्राकृतिक वातावरण प्रदान किया गया है। विदेशों से हर वर्ष हजारो पर्यटक इन्हे देखने के लिये यहॉ आते है और "जंगल के राजा" को प्राकृतिक वातावरण में देखकर अपनी हजारों किलोमीटर की यात्रा को सफल समझते हैं, अत: बान्धवगढ़ के अतीत के सम्बन्ध में सम्यक् जानकारी -

देने की दृष्टि से इस कृति का सृजन किया गया है ताकि पर्यटक तथा जिज्ञासु बान्धवगढ़ के सम्बन्ध मे अपनी जिज्ञासा को तृप्त कर सकें।

"बान्धवगढ़" का 'रीवा राज्य' के अन्तर्गत दिये गये विवरणो में उल्लेख है जो अत्यल्प है, यहाँ बान्धवगढ़ के सम्बन्ध में अपेक्षतया, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, विस्तार से उल्लेख किया गया है।

इस कृति के लेखन में संदर्भित ग्रन्थों, जिनका उल्लेख अन्त में 'सन्दर्भ ग्रन्थ' के अन्तर्गत किया गया है , से पर्याप्त तथ्यात्मक जानकारियां ली गई हैं, लेखक उनके प्रति कृतज्ञ है। आज सर्वत्र अन्वेषणात्मक दृष्टि एवं कार्य की आवश्यकता है।

इस कृति के लेखन- प्रणयन के पीछे प्रिय राजेश सिंह राणा वर्तमान सरपंच ताला, (2004-2009) प्रिय शिष्य वृन्द शेषाशक्तिधर द्विवेदी, विनोद कुमार द्विवेदी, राजेश कुमार द्विवेदी का आग्रहपूर्ण अनुरोध रहा है। यदि आवश्यकता हुई तो इस कृतिका आँग्ल भाषा में रूपान्तरण भी निकट भविष्य में होगा। लेखक उक्त शिष्यों के सहयोग एवं आग्रहपूर्ण अनुरोध निवेदन के लिये हृदय से शुभाशीष देता है जिसके कारण इसका लेखन सम्भव हुआ है।

इस कृति के रूपांकन मे लेखक को जिन महानुभावों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग-योगदान मिला है , प्रोत्साहन एवं प्रेरणा मिली है, वह उन सबके प्रति हृदय से आभारी है।

मानपुर छेदीलाल सिंह..............

31.3.2008

बान्धवगढ़

प्रस्तावना

वैज्ञानिकों के अनुसार लगभग दस लाख वर्ष पूर्व इस धरा पर आदिमानव का आविर्भाव हुआ, उसी से "होमोसिपियन्स" यानी आधुनिक मानव का विकास लगभग चालीस हजार वर्ष ईसा पूर्व हुआ, किन्तु क्रमबद्ध इतिहास दस हजार वर्ष ईसा पूर्व तक का भी उपलब्ध नहीं है।

इस धरा पर सर्वप्रथम आदिमानव कहां उत्पन्न हुआ, यह अब तक अज्ञात है, मानव की उत्पत्ति कब कैसे हुई, यह भी अब तक अन्धकार में है। कुछ वर्षो पूर्व उज्जैन में सुखदास व्यास ने अपने शोध में दावा किया है कि मानव की प्रथम उत्पत्ति मध्यपदेश में स्थित विन्ध्याचल पर्वत के आसपास हुई।

जीवशास्त्रियों का मत है कि इस धरा पर अचानक कुछ भी नही हुआ है, सब लम्बे कालखण्ड में हुये विकास का परिणाम है।

❁ ❁ ❁

इस धरा पर मानव ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है। लाखों वर्षों के विकास के फलस्वरूप मानव वर्तमान स्वरुप में पहुंचा है,यह भी उसका अन्तिम स्वरूप नहीं है।

आधुनिक मानव को इस धरा पर आये लाखों वर्ष बीत गये। लेकिन सभ्यता के विकास की कहानी कुछ हजार वर्षो की ही ज्ञात है। यदि हम कालगणना करें तो मुश्किल से यह अवधि दस हजार वर्षो की होती है। इसके पूर्व का इतिहास अन्धकार में ढका हुआ है, दस हजार वर्षो का क्रमबद्ध इतिहास भी उपलब्ध नहीं है।

मानव की उत्पत्ति किसी स्थान विशेष में नहीं हुई। अनेक स्थानो पर कालक्रम से हुई। इसीलिये उनके रूप-रंग, बनावट, कद आदि में अन्तर रहा। चूंकि धरती का स्वरूप गोलाकार है, वह अपनी कीली पर 23½ अंश झुकी हुई है, चौवीस घंटे में अपनी कीली पर एक चक्कर लगाती है, उससे रात-दिन बनते हैं, रात दिन सब जगह बराबर भी नहीं होते। पृथ्वी तीन सौ पैंसठ दिन में सूर्य का एक चक्कर लगाती है, इससे ऋतुयें बनती हैं- गर्मी, बरसात जाड़ा। लेकिन इन ऋतुओं का कालखण्ड धरती के सभी भूखण्डों में समान नहीं होता। इस असमानता के कारण उसके जलवायु, और उन भूखण्डों में निवास करने वाले मनुष्यों के रूप-रंग, कद, स्वभाव, खान-पान, पहिनावा में अन्तर होता है, यह प्रकृतिजन्य है।

❁ ❁ ❁

अलग-अलग स्थानों के मानव समूहों में जलवायु की भिन्नता के कारण सभ्यता के विकास की कहानी में भी भिन्नता रही है, जहां की जलवायु -

समशीतोष्ण थी। उन स्थानो के निवासी अन्य स्थानो के निवासियो की तुलना में सभ्यता की दौड़ में आगे रहे हैं। कालान्तर में वे अन्य स्थानों की तुलना में अधिक आगे बढ़ गये।

भिन्न-भिन्न स्थानों में उत्पन्न व्यक्ति समूहों को नृतत्वशास्त्रियो (Anthropologists) ने अलग-अलग श्रेणियों में विभक्त किया है।

विन्ध्यांचल के दक्षिण में निवास करने वाली जातियों को नीग्रो, आस्ट्रिक, मंगोल समुदाय की बताया गया है। यहाँ के आदिवासी 'मुण्डा', 'शवर', 'भील', 'किरात' 'अन्ध्र', 'पुलिन्द', 'भर', 'भार शिव', 'पुण्ड्र' उक्तांकित समुदायो से सम्बद्ध रही हैं। पूरे विन्ध्य क्षेत्र के आदिवासियों का मूल अंश इसी पृष्ठभूमि से सम्बद्ध है जो सुदूर अतीत से जुड़ा हुआ अद्यतन चला आ रहा है, जिनके वंशज 'गोण्ड', 'कोल', 'भील', 'भरिया', 'बैगा', 'पनका', आदि नाम से आज भी इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में निवास कर रहे हैं। सुदूर अतीत में इस क्षेत्र के यही अधिपति और स्वामी रहे हैं। 'आदिमानव बैगा' ही वह आधारभूत मानव समुदाय रहा है जिससे कालान्तर मे कालक्रम में 'गोण्ड,' 'पनिका,' 'अगरिया,' 'कोल,' 'भील,' आदि अन्य अनेक आदिवासी जातियां उत्पन्न हुईं और मूल से अपनी पृथक पहचान बना लीं। इसके सम्बन्ध में पृथक से आगे विचार किया जायेगा क्योंकि 'आदिमानव बैगा' ही इस क्षेत्र का आदिकाल से प्रारम्भिक निवासी रहा है। अब इनकी आबादी पूर्व की अपेक्षा बहुत कम हों गई है।

चूंकि यहां का मूल निवासी विन्ध्यांचल पर्वत के कारण उत्तर भारत से, जहां सभ्यता और संस्कृति का विकास अन्यान्य कारणों से यहां की तुलना में बहुत अधिक हो गया था। कटा हुआ था, यहाँ सूचीभेद्य घनघोर जंगल था। यहाँ विन्ध्याचल की ऊँची-ऊँची पर्वत श्रेणियां और पठारी भाग थे, लोगों का जीवन पूरी तरह शिकार, फल-फूल और कन्द पर आधारित था, कृषि का ज्ञान नहीं था, अत: यहाँ के मूल निवासी विकास की दृष्टि से बहुत पीछे रहे।

उत्तर भारत में बसने वाली समुन्नत जाति आर्य सप्तसैन्धव [सिन्धु, झेलम चेनाव, रावी,व्यास,सतलज तथा सरस्वती सात नदियों का क्षेत्र, जो सप्तसैन्धव के नाम से ऋग्वेद में उल्लिखित है] प्रदेश से विभिन्न भूभागों में और पूर्व में बंगाल तक बढ़ते और बसते गये। इसी किसी कालखण्ड में अगस्त्य ऋषि विन्ध्य पर्वत को लांघकर दक्षिण भारत का मार्ग खोला था। कहा जाता है कि मध्य भारत के जंगल बहुत घने और वन्य प्राणियों से भरे-पटे थे। इतना घना जंगल था , घनी कंटीली झाड़ियां थीं कि उनके बीच से बहुत संभलकर निकलने के बावजूद उनका शरीर कांटो से बिंधकर लहू-लुहान हो गया था। पर्वत श्रंखलायें, घाटियां, विस्तृत मैदान कंटीली झाड़ियों और ऊँचे-ऊँचे विशाल वृक्षों से आच्छादित था, इतना घना वन था कि दिन में सूर्य की रोशनी भी इन्हें चीरकर जमीन तक नहीं पहुंचती थी। मार्ग नहीं थे, अगस्त्य मुनि का शरीर कांटो से बुरी तरह बिंध गया था। अत: उन्होंने ही पर्वत का नाम विन्ध्याचल रख दिया। ' विन्ध जाने से ' विन्ध्यक्षेत्र' नाम पड़ गया। अगस्त्य मुनि समुद्र के किनारे तक गये। इनके बहुत बाद उत्तरभारत से मार्कण्डेय ऋषि विन्ध्यक्षेत्र में आकर सोन और महानदी के संगम पर अपना आश्रम वनाया और तपस्या करते रहे। उन्होंने यहां के मूल निवासियों को आर्य संस्कृति से परिचित कराया और आर्य संस्कृति का प्रसार किया।

बान्धवगढ से मार्कण्डेय आश्रम लगभग 45 किलोमीटर दूर उत्तर में है। लेकिन बाणसागर बांध बन जाने से जलभराव के कारण 'मार्कण्डेय आश्रम' जलमग्न हो गया। बाणसागर बांध 1972 में प्रारम्भ हुआ था। 1992 ई.तक में बन जाना था। इस बांध का उद्घाटन पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने दिनांक 25 सितम्बर 2006 को किया। अब मार्कण्डेय आश्रम इतिहास के पन्नों में सिमटकर रह गया। बांध के बनने में लगभग 35 वर्ष लगे।

अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र श्रीराम [1]अयोध्या से अपने अनुज लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ चौदह वर्ष के वनवास में चित्रकूट आये। वहां से चलकर विन्ध्यांचल पार किया और विन्ध्य क्षेत्र होते हुये दक्षिण की ओर किष्किन्धा से लंका तक गये थे। दक्षिण भारत में लगभग चौदह वर्षों तक रहे, यहीं दक्षिण भारत में उनकी पत्नी सीता का लंकाधिपति रावण ने अपहरण कर लिया था। यहीं के आदिवासियों ने भगवान श्रीराम की सहायता की थी और रावण के साथ हुये युद्ध में श्रीराम की मदद की थी, इनमें हनुमान, सुग्रीव, अंगद, जामवंत, नल,नील आदि शूरमाओं ने श्रीराम की प्रभूत सहायता की। ऋक्ष,वानर,गृद्ध आदि वनवासियों ने श्रीराम के लिये अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया। ये सब दक्षिण भारत के निवासी थे। इनकी सभ्यता आर्यों से भिन्न थी। लेकिन श्रीराम के दक्षिण भारत में

1. अमेरिकी अन्तरिक्ष एजेन्सी नासा के साफ़्टवेयर की गणनाओं के मुताबिक राम ने रावण का बध ईसा से 5076 साल पहले किया था।

राम के जन्म से लेकर वनवास, राम रावण युद्ध और फिर अयोध्या लौटने तक की हर तिथि की नासा प्लेनेटोरियम साफ़्टवेयर गणना करता है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के सेवानिवृत्त अधीक्षक पुरातत्वविद् डा. एल.एम.बहल का कहना है कि इन तिथियों का मिलान पुरातन श्लोको से करने पर इनकी पुष्टि होती है। दिल्ली के आयकर विभाग की एक उच्चाधिकारी सरोजबाला का एक इंटरव्यू, 'नो मिथ' शीर्षक से एक अंग्रेजी पत्रिका के अगस्त 2005 अंक में प्रकाशित हुआ है। तीन दशक से राम व रामायण पर काम कर रही सरोजवाला का दावा है कि ये घटनायें काल्पनिक नहीं है।

आई.आर.एस. डा. पुष्कर भटनागर ने रामायण में दी गई तिथियों का खगोलीय अध्ययन किया है। डा. पुष्कर भौतिकी के वैज्ञानिक भी हैं। उन्होंने जब नासा के प्लेनेटोरियम साफ़्टवेयर से रामायण में दिये समय को फीड किया तो जो परिणाम आये वे चौकाने वाले थे। जब उनका मिलान श्लोकों में दी गई तिथियों से किया गया तो वे सब सही निकली। श्रीराम का जन्म 10 जनवरी 5114 ई.पू. हुआ था। श्रीराम विश्वामित्र की यज्ञशाला की रक्षा के लिये 5101 ई.पू. में गये थे। यही वर्ष ताड़का बध का भी है। उस समय उनकी उम्र 13 वर्ष की थी। श्रीराम का राज्याभिषेक 25 वें जन्मदिवस 5 जनवरी 5089 ई.पू. पर नियत किया गया था।

स्वतंत्रमत दिनांक 14.9.07 दिन शुक्रवार से उद्धृत, पृष्ठ 5

चौदह वर्षों तक निवास करने के कारण इनको आर्य संस्कृति में दीक्षित होने का अवसर मिल गया। दक्षिण भारत में आर्य संस्कृति का प्रचार-प्रसार हुआ। आर्य-अनार्य के बीच खिंची रेखा धूमिल हो गयी। उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक आर्य संस्कृति का प्रसार हो गया।

ऐसी किम्बदन्ती है कि भगवान श्रीकृष्ण का भी पदार्पण इस क्षेत्र में हुआ है। महाभारत काल में यह क्षेत्र मत्स्य देश[1] था राजा विराट की राजधानी वर्तमान सोहागपुर थी। वर्तमान में सोहागपुर नयी बस्ती है। बाघेल शासक सोहागदेव [1203 से सन् 1218 ई.] की बसाई हुई है। यह उस स्थान के आसपास बसी है। जहां राजा विराट का आवास था। यहां पांडव एक वर्ष अज्ञातवास में रहे हैं। यहां कर्ण ने राजा विराट की गायों का अपहरण किया था। सोहागपुर निवासी ठाकुर साधों सिंह ने महाभारत काव्य का गहराई से अनुशीलन करके ऐसे बासठ स्थान चिन्हित किये हैं जो अब भी विकलावस्था एवं किम्बदन्तियों में अवस्थित है। साहित्यकार ठाकुर साधौ सिंह ने शहडोल[2] जिले का नाम विराटनगर किये जाने का अथक प्रयास किया किन्तु नामान्तरण की फाइल एक टेबुल से चलकर दूसरी में सो जाती रही। ठाकुर साधौ सिंह जीवन भर फाइल को जगाने और आगे ढकेलने मे लगे रहे लेकिन उसे वांछित स्थान तक नहीं पहुंचा सके और वह शतायु होकर दिनांक 19.5.2001 ई. को चिरनिद्रा में लीन हो गये।

===

मत्स्यदेश- मत्स्य देश के शासक विराट थे। शहडोल में विराट मन्दिर, वाणगंगा उनकी और पाण्डवों की स्मृति संजोये हैं। लेकिन कुछ इतिहासकारों का मत है कि मत्स्यदेश राजस्थान के जयपुर- भरतपुर-अलवर क्षेत्र में स्थित था। यह क्षेत्र पशुपालन के लिये बहुत उपयुक्त था। वर्तमान मे इसे वैराट कहते हैं।

2शहडोल- शहडोल जिला विखंडित होकर अनूपपुर, शहडोल, उमरिया जिलो में बदल गया है। उमरिया जिले का पूरा भूभाग 5 जू0 1998 ई. तक शहडोल जिले की तहसील के रूप में था। 6 जु. 1998 से यह तहसील जिला बन गई।

नक्शा उमरिया

बान्धवगढ़ की स्थिति
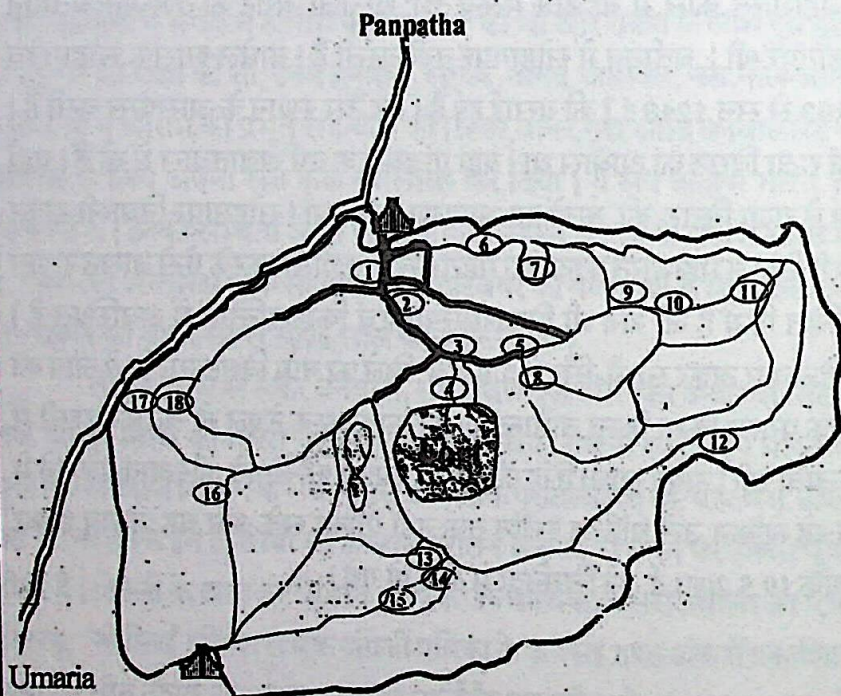
BANDHAVGARH TIGAR FESERVE

स्थिति एवं संरचना

मध्यप्रदेश में, उत्तर-पूर्व भाग में बान्धवगढ़ स्थित है यह सतपुड़ा पर्वत श्रृंखला के उत्तरी पार्श्व में है। यह उत्तरी गोलार्द्ध में है। अक्षांस एवं देशान्तर रेखाओ के माध्यम से यदि इसकी स्थिति बताना चाहें तो कह सकते हैं कि यह 23°30″से 23°46″ अक्षांश और 80°11″ और 80°36″ अंश पूर्वी देशान्तर के मध्य है।

उत्तर-पूर्वी रेल्वे लाइन पर स्थित उमरिया रेल्वे स्टेशन से यह 32 किलोमीटर उत्तर की ओर है। बान्धवगढ़ कटनी, शहडोल, रीवा और सतना से, जो जिला मुख्यालय हैं, लगभग बराबर दूरी पर है। यह वर्तमान में उमरिया जिले के अन्तर्गत है।

प्रकृति सम्पदा से समृद्ध इस वन क्षेत्र को सर्वप्रथम सन् 1968 ई. में राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया था। उस समय इसका क्षेत्र 105 वर्गकिलोमीटर था। फिर इसका क्षेत्र सन् 1982 ई0 में बढ़ाकर 448 वर्ग किलोमीटर कर दिया गया। सन् 1993 ई.में इसे 'प्रोजेक्ट टाइगर रिजर्व' [बाघ संरक्षण परियोजना] के अन्तर्गत कर दिया गया।

बांधवगढ़ की श्रेणियां ऊंची तथा अत्यन्त प्राचीन हैं। ये पर्वत श्रेणियां आदिम कालीन हैं। हजारों वर्षो की गर्मी, सर्दी एवं बरसात की मार और पृथ्वी के धरातल पर हुये परिवर्तनों के कारण ये श्रेणियां टेढ़ी-मेढ़ी, नंगी, ऊँची-नीची है और कही-कहीं एक दम खढ़ी है। हजारो वर्षों के मौसमी आघात से इसकी चट्टानों का बहुत क्षरण हुआ है। इसकी चट्टानें आगे की ओर निकली हुई हैं। इसका धरातल ऊंचा-नीचा है। समुद्र सतह से इसकी ऊंचाई 440 मीटर से 811 मीटर तक है।

बान्धवगढ़ का अधिकांश भाग पहाड़ी है, पठारी है। इसकी पर्वत श्रेणियाँ विस्तृतरूप से फैली हुई एक दूसरे से गलबहियां करती दिखती हैं। ये पहाड़ियाँ पूर्व-पश्चिम की ओर फैली हुई हैं। पूरा भूखण्ड विस्तृत क्षेत्र में फैला है जो हरीतिमा से ढका हुआ आकर्षक दृश्य उपस्थित करता है।

बान्धवगढ़ का ढलुआ भाग नाना प्रकार की वनस्पतियों और वृक्षों से आच्छादित है। ऊँचे-ऊँचे शाल के वृक्ष भी विस्तृत क्षेत्र में फैले हुये हैं। ऊपर से देखने में पूरा विस्तृत क्षेत्र गहरी हरी चादर ओढ़े बहुत मनमोहक और आकर्षक लगता है।

इसकी नुकीली और बाहर की ओर निकली हुई चट्टानें गिद्धों और बाजों के लिये बहुत आकर्षक हैं। इन पक्षियों के लिये ये चट्टानें और इनकी खोहें अच्छी शरण स्थल हैं।

बान्धवगढ़ की चट्टानों में बालू का अंश अधिक है। अत: ये बलुई चट्टानें एवं बलुई भूमि वर्षा के पानी को शीघ्रता से पी लेती हैं जो यत्र-तत्र प्राकृतिक जलस्त्रोत,झरनों आदि के रूप में बाहर निकलता और बहता है। ये जलस्त्रोत एवं झरने कई नालों और नदियो के उद्‌गम स्त्रोत बनते हैं तथा नीचे समतल भूमि में दलदल निर्मित कर देता है। घाटियों, मैदानों एवं नदी-नालों के किनारे विभिन्न प्रकार की घासें उगती हैं। इन घासों के कारण जंगल में रहने वाले वन्यप्राणियों को पर्याप्त भोजन मिल जाता है, और उनके रहने-बसने तथा वंशवृद्धि के लिये उपयुक्त वातावरण मिल जाता है। यहां नम दलदल भूमि में काँस, गूंज आदि बड़ी ऊँचाई वाली घासें उत्पन्न होती है लेकिन सूखे स्थान में कम ऊँचाई की घासें होती है।

बान्धवगढ़ का ऊपरी समतल भाग लगभग 95 हेक्टेयर का है। इस पठारी समतल भाग में बारह तालाब है जिनमें आठ छोटे और चार बड़े हैं। छोटे तालाबों में दशहरा-दीपावली के आसपास तक पानी रहता है, लेकिन बड़े तालाबों में साल भर पानी रहता है। ऊपर एक मन्दिर है जिसमें भगवान राम , सीता , लक्ष्मण तथा हनुमान जी की प्रतिमायें प्रतिष्ठित है। मन्दिर का निर्माण बाघेल शासक ने किया है। मंदिर के पास स्थित तालाब को "रानी तालाब" और उसके दक्षिण में "बाबा तालाब" है। बाबा तालाब का निर्माण मानवश्रम से किया गया है यों तो रानी तालाब के निर्माण में भी बहुत मानवश्रम लगा है। प्राकृतिक रूप से पानी के बहाव से बने नाले को मानवश्रम से आयताकार का रूप देकर पत्थरों का उपयोग करके अच्छे तालाब का रूप दे दिया गया है। लेकिन इसके दक्षिण में बने "बाबा तालाब" का निर्माण बहुत श्रम से हुआ है। पठारी भूमि में बने गड्डों को, जो बरसात के पानी बहते रहने के कारण बालूदार पत्थरों के क्षरण से बदरूप उथले नाले के रूप मे हो गया था, उसे चारों ओर से छेनी हथोड़ों से काट-काट कर आयताकार विशाल तालाब का रूप दे दिया गया। इस तालाब मे इतना जल संग्रहीत हो जाता है जो हजारो लोगों की पानी सम्बन्धी सारी आवश्यकतायें वर्षो तक पूरी करने मे समर्थ है। क्षेत्रीय लोग "रानी तालाब को नाँद" और इस तालाब को 'भाँद' कहते हैं। लोगो का विश्वास है कि नाँद और भाँद के बीच में अकूत-

सम्पत्ति गड़ी हुई है। यह सम्पत्ति कहाँ, किस स्थान में है, इसका पता अब तक किसी को नहीं हो सका है।

बाबा तालाब से कुछ दूर पर 'कबीर तालाब' है जिसे लोग 'कबिरहा तालाब' कहते हैं। लोगो का विश्वास है कि सद्‌गुरु कबीर जब बांधवगढ़ में आये थे तब इसी तालाब के पानी का उपयोग नहाने-धोने मे करते थे। उसी के समीप उनका चबूतरा है और गुफा है जो 'कबीर चौरा या 'कबूतरा-चबूतरा' तथा 'कबीर गुफा' के नाम से आज भी लोग जानते हैं। सद्‌गुरु कबीर के अनुयायी हर वर्ष इन स्थानों में आते हैं और उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि व्यक्त करते हैं।

बान्धवगढ़ के पश्चिम मे एक पहाड़ी है जिसकी ऊँचाई 'बांधव' के लगभग बराबर है। इस पहाड़ी को लोग 'बन्धैनी' कहते है। 'बांधव' और 'बॅधैनी' के बीच लम्बी, गहरी हरीतिमा से ढकी हुई घाटी है। क्षेत्रीय जनजातियों का यह विश्वास है कि 'बंधैनी' 'बान्धव' की सहचरी है। दोनो आदर्श दम्पत्ति की तरह युगों-युगों से एक साथ रह रहे है। दोनों पहाड़ियों के विस्तृत क्षेत्र प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर है।

बान्धवगढ़ के वन नम ऊष्णकटिबन्धीय क्षेत्र के अनतर्गत हैं। इस क्षेत्र में स्थित वृक्ष वर्ष में एक बार अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं, यह पतझड़ सामान्यत: मार्च माह में होता है।

बान्धवगढ़ के उत्तरी भाग मे ऊंचाई पर एक प्रस्तर खण्ड में भगवान विष्णु की विशाल प्रतिमा सातफनों वाले सर्प के शरीर के ऊपर लेटी हुई मुद्रा में है। इसे 'शेषशायी' कहते हैं। इसी तरह अन्य कई प्रस्तर मूर्त्तियां यथा वाराह [Boar], मत्स्य [Fish] कच्छप [Tortoise] भगवान के अवतारों की हैं। किले के चारो ओर मानव निर्मित बत्तीस गुफायें है जिनमें चित्र बने हैं, और कुछ गुफाओं मे ब्राह्मी लिपि में प्राकृत भाषा में लेख हैं जिन्हें ठीक-ठीक अब तक नहीं पढ़ा जा सका है।

'बान्धव' और 'बन्धैनी' क्षेत्र में लगभग बीस छोटी बड़ी नदी-नाले हैं जो किसी झरने या नीचे से स्वत: निकल रहे जलस्त्रोत से जन्म लेते हैं इनमें से बड़ी नदियाँ उमरार, जुहिला, और जनाढ हैं। ताला रैन्ज के अन्दर चरणगंगा, दमनार, बनबेई, अम्बा नाला, अन्धेरी झिरिया आदि प्रमुख है। ये सभी नदियॉ अन्त में सोननदी में मिल जाती हैं जो दक्षिण की प्रमुख सहायक नदी है। सोन नदी इस-

उद्यान क्षेत्र के जल को समेटकर बिहार प्रान्त में पटना के पास गंगा नदी में डाल देती है, दक्षिण को गंगा के कछार से जोड़ने का काम सोन नदी करती है। अब सोननदी पर देवलोंद के पास एक विशाल बांध बन गया है जिसे 'बाणसागर' कहते हैं, महाराजा हषवर्द्धन [606-647 ई.] की दरवार मे 'बाणभट्ट[1]' नाम के अत्यन्त प्रतिभाशाली संस्कृत के विद्वान थे उनका जन्म बांध के समीप एक गांव में सन् 576 ई. के आसपास हुआ था। उन्ही के नाम पर इस बांध का नाम 'बाणसागर' रखा गया है। यह बहुउद्देशीय बांध है।

इस बांध का निर्माण कार्य 1972 से प्रारम्भ हुआ था। 1992 ई. तक बन जाना था। किन्तु इसका निर्माण पूरी तरह से अब तक नहीं हुआ है। यद्यपि इसका उद्घाटन भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी बाजपेयी द्वारा 25 सितम्बर 2006 को कर दिया गया है।

इस बांध से विद्युत उत्पादन प्रारम्भ हो गया है। इससे नहर निकालकर उसके जल को मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार प्रान्त के खेतों तक पहुंचाया जा रहा है। इस बांध के कारण रीवा का बड़ा भूभाग सिंचाई के अन्तर्गत आ गया है।

इस बांध के माध्यम से पार्क से निकलने वाले नदी-नालों का पानी तीन प्रान्तों के खेतों तक पहुंच रहा है और कृषि उत्पादन को बढ़ाकर कृषकों को समृद्ध करने में सहायक हो रहा है।

1.बाणभट्ट- बाणभट्ट का जन्म वात्स्यायन कुल में हुआ था जो ब्राम्हणों में उच्च और सम्माननीय माना जाता है। इनका जन्म सोननदी जिसे पुराणों में हिरण्यवाह-शोणनदी, स्वर्णभद्र कहा गया है, के पश्चिमी तट में स्थित ग्राम 'प्रीतिकूट' में हुआ। इनके पिता का नाम 'चित्रभानु' और माता का नाम 'राज्यदेवी था। यह संस्कृत के उद्भट विद्वान थे। इनकी 'कादम्बरी' 'हर्षचरित्र' एवं 'चण्डीशतक' अत्यन्त प्रसिद्ध कृतियाँ है। यह सम्राट हर्ष के दरबारी कवि थे, सम्राट हर्ष के चहेता थे, इन्हीं के नाम पर, इनके जन्मस्थान के समीप सोन नदी पर बने बांध का नाम 'बाण सागर' रखा गया है।

राम सीता लक्ष्मण
वनगमन

नामकरण

किम्बदन्ती है कि भगवान श्रीराम को जब उनके पिता राजा दशरथ ने पत्नी कैकेयी के आग्रह पर चौदह वर्ष का वनवास दे दिया था, तब भगवान श्रीराम पत्नी सीता एवं अनुज लक्ष्मण के साथ अयोध्या से चित्रकूट होते हुये विन्ध्यांचल पर्वत पारकर बान्धवगढ़ आये थे और एक चौमासा यहां व्यतीत किये थे। आज भी सीता-रसोई पर्वत पर स्थित है। यहां के मूल निवासियों ने उनका आदर-सत्कार किया था। भगवान श्रीराम को यह स्थान बहुत प्रिय लगा था। अत: उन्होंने अनुज लक्ष्मण को यह क्षेत्र सौंप दिया था। 'बन्धु' द्वारा सौंपे जाने के कारण इसका नाम 'बान्धवगढ़' पड़ गया। इस किम्वदन्ती में कितना सार है, कहा नहीं जा सकता।

वस्तुत: 'बान्धवगढ़' दो शब्दों का यौगिक है बान्धव + गढ़ 'बान्धव' बन्धु से बना है जिसका अर्थ 'स्वजन', 'भाई' 'मित्र' तथा 'सगोत्र' होता है इस प्रकार 'बान्धवगढ़' का अर्थ स्वजनों, मित्रों, तथा बन्धुओं का किला होता है।

'बांध' 'बध' शब्द का अपभ्रंश हो सकता है। 'बध' का अर्थ 'हनन' 'हत्या' होता है। अतीतकाल में मानव आखेटक था। वह अपनी जीविका के लिये पूरी तरह से पशुओं के शिकार पर निर्भर था। पशु ही उसके उदर-पोषण के आधार थे। उत्सव के अवसरों पर अनेक पशुओं का हनन होता था। यह भूभाग अनेक प्रकार के वन्य प्राणियों के निवास के लिये आदर्श स्थान था। यहाँ वन्यप्राणी प्रचुर मात्रा में थे। अत: वन्य प्राणियों के हनन, शिकार करने तथा उनके आवासीय दृष्टि से यह स्थान उत्तम एवं सुरक्षित था। कहीं शिकार मिले या न मिले, किन्तु इस क्षेत्र में मिलना निश्चित सा था। शिकार मिलने की दृष्टि से सुरक्षित एवं निश्चित स्थान होने के कारण इसका प्रारम्भिक नाम 'बधगढ़' रहा होगा। वन्य प्राणियों का अनेक लोगों के द्वारा बन्धुभाव से शिकार किये जाने के कारण कालान्तर में 'बधगढ़' से 'बान्धवगढ' होना बहुत सम्भव है। जेसे श्रीकृष्ण का 'सिरीकेसन' 'कल्याण' का 'कल्लू' बन गया है वेसे ही 'बधगढ़' से 'बान्धवगढ' हो गया है। आज यह 'बान्धवगढ़' शब्द से ही प्रसिद्ध है। 'बधगढ़' से बान्धवगढ़ अशोक महान [273 ई.पू. से 236 ई.पू.] के समय में जब बौद्धधर्म का इस क्षेत्र में भी खूब प्रचार-प्रसार हुआ था, पशुओं की हत्या पर रोक लग गई थी, अहिंसा का वातावरण बन गया था, तब 'बधगढ़' से 'बान्धवगढ़' हो गया होगा क्योंकि यह शब्द, अर्थ,

ध्वनि की दृष्टि से बन्धुता, मित्रता तथा प्रेम का द्योतक है जबकि 'बंधगढ़' हिंसा, हनन, क्रूरता का सूचक है। बौद्धधर्म प्रेम, समानता, अहिंसा, बन्धुभाव की शिक्षा देता है।

'बधावा' शब्द हिन्दी भाषा का प्रिय अर्थ देनेवाला शब्द है जिसका अर्थ 'आत्मा को प्रिय लगने वाला' होता है, 'बधावा' शब्द का अर्थ 'बधाई' 'मंगलाचार' तथा 'बधू' भी होता है। 'बधू' के पर्यायवाची शब्द 'भार्या' 'पत्नी' है। 'बधू' का अर्थ 'नई आई हुई बहू' भी होता है। 'बहू' के आने पर ऐसे ही बधावा-मंगलाचार के शुभ अवसर आने पर इसका नाम 'बधावागढ़' से 'बान्धवगढ़' होना हो सकता है। सोमदत्त कलचुरी ने जब अपनी कन्या पद्मकुँवरि का हाथ कर्णदेव बाघेल को सौंपा और यह किला तथा इससे सम्बद्ध भूक्षेत्र भी दहेज में दिया तब ऐसा ही शुभ बधावा का यह अवसर था जो इसके 'बान्धवगढ़' नाम को सार्थक करता है।

'बाँध' का अर्थ 'प्रतिबन्ध', 'रुकावट' भी होता है। पानी रोकने के लिये बनाई गई दीवाल को बांध कहा जाता है। इसका एक अर्थ 'प्राकृतिक दृष्टि से सुरक्षित स्थान' भी है। यानी जहां शत्रु तथा अवांछित व्यक्तियों का पहुंचना सहज नहीं था, प्रतिबन्धित था, कठिन था। इसकी प्राकृतिक संरचना ऐसी है जहां कोई भी व्यक्ति सरलता एवं सहजता से नहीं जा सकता है, अत: 'बांध' से 'बान्धवगढ़' उच्चारण एवं अर्थ की दृष्टि से होना भी सम्भावित है।

'गढ़' शब्द पर भी अलग से विचार कर लिया जाय। 'गढ़' का अर्थ 'खाई' तथा 'कोट' होता है, 'बान्धव' के दक्षिण की ओर बड़ा प्राकृतिकरूप से बना खड्ड है। इसकी संरचना गहरी लम्बी खाई जैसी है। बाद में कलचुरि कर्णदेव शासक [1041-1073 ई.] द्वारा उत्तर दिशा में ऊँची पत्थर की दीवार निर्मित कराकर एक बड़ा सा दरवाजा [Gate] लगवा दिया गया। रदवाजे के निर्माण में लोंहे की बड़ी-बड़ी नुकीली कीलों को इस प्रकार से लगवा दिया गया कि इस दरवाजे को हाथी, घोड़े या अन्य किसी उपाय द्वारा न तो तोड़ा जा सके, न ही धक्का देकर पीछे की ओर ठेला जा सके। इस तरह इसे अभेद्य, सुरक्षित स्थान बनाकर किला [गढ़] का रूप दे दिया गया। अत: यह बान्धवगढ़ के रूप में धीरे-धीरे विख्यात हो गया।

कुछ लोगों का विश्वास है कि इस पहाड़ पर जब भगवान श्रीराम अपनी पत्नी सीता एवं अनुज लक्ष्मण के साथ कुछ दिनों तक रहे तो इस क्षेत्र के वनवासी जिन्हे 'वानर' 'ऋक्ष' (रीछ) 'गृद्ध' [गीद्ध] 'नाग' आदि नामों से बाल्मीकी रामायण तथा तुलसीकृत 'रामचरितमानस' में अभिहित किया गया है, उनकी सेवा और सान्निध्य में बड़ी संख्या में आने लगे थे, भगवान श्रीराम का आचरण एवं व्यवहार उनके प्रति बहुत आत्मीय बन्धु, मित्र, तथा सखा सा था। अत: श्रीराम और लक्ष्मण दो बन्धुओं के रहने और क्षेत्रीय लोगों से 'बन्धु' का सा व्यवहार किये जाने के कारण इस पहाड़ का क्षेत्रीय नाम 'बान्धव' हो गया, बाद में इसको चेतनप्राणी सा मानकर 'पुरुष' की संज्ञा दे दी गई। अब उसकी सहधर्मिणी भी होनी चाहिये, अत: दक्षिण की ओर लगभग इसी ऊंचाई वाली पहाड़ी को जो एक लम्बी गहरी खाई अथवा घाटी से पृथक होती है, 'बंधैनी' नाम देकर उसे 'बान्धव' की सहचारी बना दिया गया।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को चेतन माना गया है। पेड़-पौधे, नदी, पहाड़, वायु, बादल, सूर्य, ऊषा, आदि को सजीव चेतन देवी अथवा देवता मानकर उनकी पूजा-अर्चना की गई है। ऋग्वेद[1] में प्राकृतिक शक्तियों को देवता माना गया है। उन पर अनेक मंत्र है मंत्रों में अच्छे स्वस्थ निरापद, समृद्ध जीवन की कामना की गई है। अत: 'बान्धव' और 'बधैनी'-पुरुष और नारी के रूप में रोचक, श्रद्धास्पद कल्पना प्रकृति के प्रति हमारी पूज्य भावना का द्योतक है, ईश्वर ने इनकी सृष्टि हमारे कल्याण के लिये की है। ये मानव के हित-साधक और समृद्धिवर्द्धक है। इनकी सुरक्षा और इनके सदुपयोग से मानव सुखी और समृद्ध हो सकता है।

---

1 ऋग्वेद- विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें लगभग दस हजार मंत्र है, इन्द, वरुण, ऊंषा आदि अनेक प्राकृतिक शक्तियों को देवता मानकर उनसे स्वस्थ समृद्ध एवं दीर्घजीवन की कामना की गई है। चार वेदो यथा ऋग्वेद्, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, में ऋग्वेद् सबसे पुराना और बड़ा है। इनकी रचना ईसा पूर्व 5000 वर्ष से 3500 ई0 पूर्व हुई है, इनकी रचना एक निश्चित समय व एक समय में नही हुई है, वैदिक सूक्तो का निर्माण लगभग 1500 वर्ष के सुदीर्घकाल में निरन्तर होता रहा।
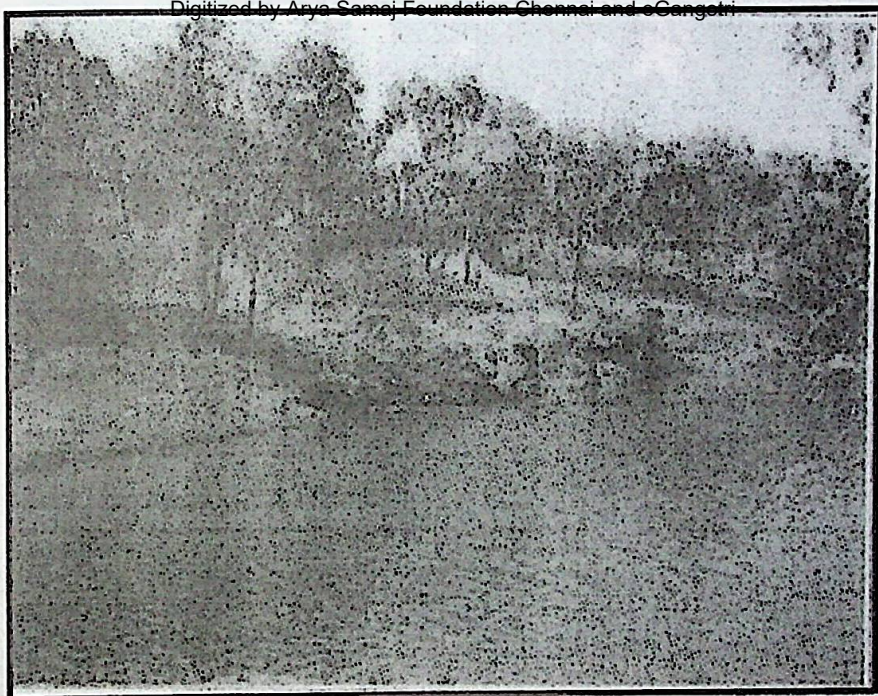
हरा-भरा वन

इतिहास

महाभारत काल (ईसा पूर्व लगभग 3500 वर्ष) में बान्धवगढ़ क्षेत्र मत्स्यदेश के अन्तर्गत था। आज भी महाराजा विराट की स्मृति को शहडोल नगर में 'वाणगंगा' और 'विराट मंदिर' संजोये हुये हैं। आज 'विराट मंदिर' जिस स्थिति में है, वह महाभारतकालीन तो नहीं है लेकिन इस बात का सूचक तो है ही कि यह मन्दिर ऐतिहासिक है। इसका निर्माण-पुनर्निर्माण अथवा पुनरुद्धार नौवीं- दशवीं शताब्दी में किसी शासक द्वारा राजा विराट् की स्मृति को स्थायित्व एवं निरन्तरता देने की दृष्टि से किया गया होगा। मत्स्यदेश के शासक विराट्की सेवा में पाण्डव-द्रौपदी नाम बदलकर एक वर्ष तक अज्ञातवास मे रहे। यहां महाराजा विराट् के साले कीचक का बध भीम ने किया था, किन्तु सारी घटनायें इतनी सुदूर अतीत की हैं कि अब यहां नाम एवं जनश्रुतियों के अतिरिक्त अन्य कोई भौतिक चिन्ह दृष्टिगत नहीं है न बहुत प्रामाणिक साक्ष्य ही उपलब्ध हैं। जिला शहडोल के भिन्न-भिन्न स्थानों में ऐसे अनेक पुरातात्विक स्थल अवश्य हैं जो इस क्षेत्र के गौरवपूर्ण अतीत के साक्षी हैं। मऊ की चोरों से बची शेष पड़ी मूर्त्तियां, अनतरा की कंकाली देवी, सिंहपुर की महावीर स्वामी की मूर्त्ति, वीरसिंहपुर की विरासिनी देवी, मुड़ना नदी के किनारे शहडोल के पास पातालेश्वर शिव तथा राजा बाग संग्रहालय में रखी अनेक दर्शनीय मूर्त्तियों में 'विष्णु', 'सूर्य', 'कुबेर', 'कृष्णलीला', 'भैरव', आदि इस क्षेत्र के गौरवपूर्ण अतीत की मूक कथा कह रही है। बान्धवगढ़ सुदूर अतीत से शहडोल-क्षेत्र के इतिहास से सम्बद्ध रहा है, प्रशासनिक दृष्टि से अब शहडोल जिले को तीन जिलो में विभाजित कर दिया गया है- शहडोल, उमरिया, अनूपपुर। लेकिन तीनों जिलो का इतिहास दीर्घकाल तक एक ही रहा है, बान्धवगढ़ का इस पूरे क्षेत्र में अनेक कारणों से विशिष्ट स्थान रहा है।

ऐसे अनेक ऐतिहासिक संकेत , लेख एवं मूर्तियो के रूप में उपलब्ध हैं जो यह बताते है कि शताब्दियों बाद इस क्षेत्र में चन्द्रगुप्त मौर्य (322 ई.पूर्व से 298 ई.पू.) तथा उसके उत्तराधिकारियों यथा विन्दुसार (298 ई.पू.से 273 ई.पू.)अशोक महान (273 ई.पू.से 232 ई.पू.) का शासन रहा है, मौर्यकाल (322 ईसा पूर्व से 184 ई.पूर्व) में इस क्षेत्र में बौद्ध-धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ। अशोक महान के पिता विन्दुसार ने अपने राज्य का बहुत विस्तार किया। उसने ताप्ती नदी के दक्षिण का भाग जो वर्तमान महाराष्ट्र है , से आगे मैसूर वर्तमान तमिलनाडु तक जीतकर -

अपने साम्राज्य में मिलाया। उसका यशस्वी पुत्र अशोक महान, उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य को सुरक्षित तो रखा ही, उसकी सीमाओं का और भी विस्तार किया।

अशोक महान ने वौद्ध[+] धर्म ग्रहण किया। उसने अपने राज्य के अनेक प्रमुख स्थानों में शिला-लेख, लघु शिला-लेख, स्तम्भ लेख, गुहालेख स्थापित करवाये। उसका एक लघु शिला लेख रूपनाथ में है जो जबलपुर के समीप है। उसके द्वारा निर्मित कराये गये स्तूप, भरहुत देऊर कोठार में एवं लघु शिला लेख सांची[1] में हैं जो भोपाल के समीप है, अशोक के शासनकाल में देश में शान्ति और राजनैतिक स्थिरता थी, व्यापार समुन्नत था, भारत के मिस्त्र, यूनान और रोम के साथ गहरे व्यापारिक सम्बन्ध थे, देश के अन्दर व्यापारी अपना माल दूर-दूर तक ले जाते थे, उन दिनों बान्धवगढ़ अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था, यहां से होकर व्यापारी मथुरा, कौशाम्बी,[2] उज्जैन की ओर जाते तथा उधर से यहां आते थे, व्यापारियों की सुरक्षा, नियंत्रण तथा कर वसूली की दृष्टि से बान्धवगढ़ की स्थिति विशेष महत्वपूर्ण थी उन दिनों पाटिल पुत्र (पटना ,वैशाली,श्रावस्ती,कौशाम्बी, अयोध्या,काशी,गान्धार,उज्जैन,मथुरा, भरहुत अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र थे। गौतम बुद्ध के पूर्व दक्षिण भारत में दण्डक, सह्य,किष्किन्धा,मलय, सुक्तिमान आदि अनेक राज्य थे। व्यापार के माध्यम से उत्तर और दक्षिण भारत एक दूसरे से जुड़े थे।

+1 बौद्ध धर्म- बौद्ध धर्म के प्रवर्त्तक गौतम बुद्ध थे, ऐसा समझा जाता है कि महाभारत युद्ध के बाद भारत की श्री और बौद्धिक विकास का पतन हो गया। जनसाधारण वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्तो से हट गया। ज्ञान विवेक का स्थान प्रचलन ने ले लिया। अन्ध विश्वास,भेदभाव,अज्ञान और धार्मिक जटिलता विकृतरूप में फैल गई। ऐसे वातावरण में गौतम बुद्ध का जन्म राजा शुद्धोधन के यहां लुम्बिनी नामक ग्राम के समीप 563 ईसा पूर्व में हुआ। इन्होंने 80 वर्ष की आयु के उपभोग के बाद अपने ज्ञान का प्रचार करने के उपरान्त 483 ई.पू. मे कुशीनारा नामक स्थान पर परिनिर्वाण प्राप्त किया। गौतमबुद्ध ने भारत के दूषित समाज का जीर्णोद्धार करके पुनीत भारत का निर्माण किया।

1 सांची- मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल से 32 किलोमीटर दूर स्थित है। यह

अशोक महान के गुहालेखों, स्तम्भ लेखों और शिलालेखों की भाषा प्राकृत है और ब्राह्मी लिपि में हैं, बान्धवगढ़ में जो शिलालेख मिले हैं, उनकी लिपि भी ब्राह्मी है भाषा प्राकृत है। वे अशोक महान के शासनकाल के हो सकते हैं बान्धवगढ़ में कुल कितने शिलालेख हैं, अधिकृत रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता है। ठीक यही स्थिति गुहालेखो के सम्बन्ध में भी है। जो शिलालेख मिले हैं, उन्हें ठीक-ठीक पढ़ा भी नहीं जा सका है।

बान्धवगढ़ मे आज तक शिलालेखों की बहुत गहराई से खोज भी नहीं की गई है। सम्भव है, खोज में कुछ और शिलालेख तथा गुहालेख मिल जायें जिनसे बान्धवगढ़ के अतीत के सम्बन्ध में कुछ अधिक प्रामाणिक ठोस जानकारी मिल जाय। जो शिलालेख मिले हैं, उनसे ज्ञात होता है कि बान्धवगढ़ में अनेक राजवंशों का शासन रहा है। उपलब्ध प्रमाणों से ज्ञात होता है। कि उत्तर भारत में जिन राजवंशो का शासन रहा है, सामान्यत: उन्ही राजवंशो का शासन यहां भी न्यूनाधिक मात्रा में कुछ अन्तरालों को छोड़कर रहा है। दीर्घकाल तक किसी एक राजवंश का शासन बाघेलो की सत्ता स्थापित होने के पूर्व यहां नहीं रहा है।

ग्वालियर- दिल्ली रेलवे लाइन पर सांची नामक रेलवे स्टेशन से कुछ दूर पर स्थित है। इसकी ख्याति एक बौद्धकला केन्द्र के रूप में है, जनश्रुति है कि अशोक महान की एक पत्नी सांची की थीं। अशोक के बाद इस स्थान को पुष्यमित्र शुंग ने कला-कृतियों से सुसज्जित किया। वह साहित्य और कला का प्रेमी था। पुष्यमित्र ने बोध गया, भरहुत, (जिला सतना) और सांची के स्तूपों को कलात्मक रूप दिया जो शुंगकाल (184 ई.पू. से 72 ई.पू.)की कला के अत्यन्त श्रेष्ठ नमूने है।

<u>2. कौशाम्बी-</u> इलाहाबाद के दक्षिण-पश्चिम 48 किलोमीटर दूर यमुना नदी के किनारे वत्स की राजधानी था। वर्तमान में यह कोसम के नाम से पुकारा जाता है, यहां अशोक महान की एक लाट और कई शिलालेख हैं, यहां भगवान बुद्ध ने एक चतुर्मासा व्यतीत किया था, यहां बड़े-बड़े व्यापारी बसते थे। आनन्द, घोषिताराम प्रसिद्ध व्यापारी, धनी और गौतमबुद्ध के परम भक्त थे।

भारत के ज्ञात इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य ही प्रथम ऐसे शासक हुये हैं जिन्होंने अनेक छोटे-छोटे राज्यों को समाप्त कर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर भारत को राजनीतिक एकता प्रदान की। चन्द्रगुप्त मौर्य (322 ई.पू. से 298 ई.पू.) ने उत्तर में हिमालय , दक्षिण मे नर्मदा-ताप्ती तक, पूर्व में बंगाल, बिहार तथा उत्तर पश्चिम में काबुल कन्धार और हिरात तक अपने राज्य की सीमाये विस्तृत की थीं। उसके पुत्र विन्दुसार (298 ई.पू. से 273 ई.पू.)ने उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य की सीमाये और विस्तृत की। बान्धवगढ़ सहित सम्पूर्ण मध्य भारत और सुदूर दक्षिण तक मौर्य वंश का शासन रहा। अशोक महान ने अपने विस्तृत साम्राज्य के अनेक स्थानों मे शिलालेख, स्तूप, गुहालेख, लाट स्थापित कराये जिनमें पेशावर, कालसी (देहरादून) में गिरनार (जूनागढ़) में, धौली (उड़ीसा के पुरी जिले)में इरागुड़ी (कुर्नूल जिला तमिलनाडु)में सोपारा (बम्बई के उत्तर थाना जिले) मे है, इन स्थानो में शिलालेख हैं। अनेक लघु शिला-लेख, स्तम्भ लेख, लघु स्तम्भलेख,गुहालेख उनके विस्तृत साम्राज्य में यत्र-तत्र लगे हैं। ऐसे ही लघु स्तम्भ लेखों एवं गुहालेखों में बान्धवगढ़ में प्राप्त लेख भी हैं।

मौर्य साम्राज्य के पूर्व से ही देशपर विदेशी आक्रमण हो रहे थे। किन्तु जब तक मौर्य शासक सशक्त और प्रबल रहे तब तक आक्रमण कारी अपने उद्देश्य में सफल नही हो सके देश में राजनीतिक एकता बनी रही। लेकिन मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद देश में फिर राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हो गयी। अनेक छोटे-छोटे राज्य और अनेक राजवंश उत्पन्न हो गये। मौर्य साम्राज्य के अन्तिम शासक बृहद्रथ को उसके सेनापति पुष्यमित्र ने हत्या करके शुंग-वंश की नींव डाली। बृहद्रथ के समय में विदेशी आक्रमण हो रहे थे। बृहद्रथ उन्हे रोकने में असमर्थ रहा। पुष्यमित्र (184 ई.पू. से 148 ई.पू.) की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अग्निमित्र सिंहासन पर बैठा। अग्निमित्र अच्छा सैनिक तथा कूटनीतिज्ञ था।

शुंग शासकों ने भारत पर होने वाले विदेशी आक्रमणों को बहुत हद तक विफल किया। इन्होने वैदिक धर्म और हिन्दू संस्कृति को पुन: प्रतिष्ठित किया जिसका अशोक महान के शासन काल में ह्रास हो गया था। इस वंश के महान शासक एवं राजवंश संस्थापक पुष्यमित्र के काल में बोध-गया, भरहुत (सतना) और सांची के स्तूपों को कलात्मक रूप दिया गया।

इस वंश का अन्तिम शासक देवभूति था। उसकी हत्या उसके कण्व नामक मंत्री ने 72 ई. मे कर दी। उसने कण्व राजवंश की स्थापना की। कण्ववंश के शासक विदेशी आक्रमणों को बहुत समय तक रोक सकने में असमर्थ रहे। धीरे-धीरे राजनीतिक अस्थिरता बढ़ती गयी। केन्द्रीय शक्ति के अभाव में अनेक छोटे-छोटे राज्य अस्तित्व में आ गये। विदेशी आक्रमण बढ़ते गये। आक्रान्ताओं ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत को त्रस्त कर दिया था। शुंगवंशीयराजे कुछ समय तक इनका टक्कर लेते रहे। कण्ववंश के शासक तथा सात वाहन सम्राटों ने भी इन आक्रान्ताओं से संघर्ष करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। लेकिन भारत में यूनानी, शक, कुषाण उत्तर पश्चिम भारत मे मौर्य साम्राज्य काल से ही बस्तियां बसाकर जम गये थे और बड़े भूभाग के स्वामी बन गये थे। यहां इनके सम्बन्ध में कुछ उल्लेख कर देना समीचीन है।

<u>यूनानी-</u> मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद विदेशी आक्रमण पुन: आरम्भ हो गये क्योंकि उनको रोकने के लिये कोई प्रबल शक्तिशाली शासक न था। देश में अनेक छोटे छोटे राज्य उत्पन्न हो गये थे। सब अपनी अपनी ढपली बजा रहे थे। परस्पर संघर्षरत हो जाते थे। सिकन्दर (350 ई.पू.-323 ई.पू.) की मृत्यु के बाद उसके द्वारा विजित भूभाग उसके सेनापतियों के बीच विभक्त हो गया। भारत तथा उसका पश्चिमोत्तर भाग सेल्यूकस को मिला। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरु-मंत्री चाणक्य की सहायता से उसे (सेल्यूकस) पराजित करके उसकी पुत्री हेलेन से विवाह किया और दहेज में बड़ा भूभाग प्राप्त किया। इस पराजय से हतोत्साहित होकर यूनानियों ने लगभग सौ वर्षों तक भारतवर्ष पर पुन: आक्रमण करने का साहस नहीं जुटाया। लेकिन मौर्य शासन के पतन के बाद यूनानी शासक डेमिट्रियस ने 183 ई.पू. भारत पर आक्रमण किया और पंजाब के विस्तृत भूभाग पर अधिकार कर लिया। डेमिट्रियस के बाद मीनेण्डर जो उसका दामाद और उसका सेनापति भी था, शासक हुआ। बौद्ध धर्म के ग्रन्थो में मीनेण्डर को मिलिन्द नाम से सम्बोधित किया गया है।

मीनेण्डर अपनी उपलब्धियों के कारण बहुत प्रसिद्ध हुआ। वह यूनानी इतिहास का बहुत महत्वपूर्ण शासक था। उसकी सफलतायें सिकन्दर महान से इक्कीस थीं। मीनेण्डर 180 ई.पू. से 147 ई.पू. तक शासक रहा।

मीनेण्डर बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया था। वह बहुत न्याय प्रिय और जनता का शुभचिन्तक था। वह अपनी जनता में बहुत लोकप्रिय था। उस समय सभी यूनानी हिन्दू हो गये। विदेशी होने का लेवेल समाप्त हो गया।

उसने अपने शासन काल में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिये अनेक बौद्ध विद्वानों को मध्य एशिया के अनेक देशों में भेजा। बौद्ध धर्म का वहां खूब प्रचार-प्रसार हुआ। वहां से बौद्ध धर्म चीन, कोरिया, जापान भी पहुंच गया।

शक- शक जाति के लोग सीर दरिया (मध्य एशिया) में निवास करते थे। किन्तु यूह-ची जाति के लोग उन्हें वहां से खदेड़कर वहां स्वयं बस गये। शक सीर दरिया से विस्थापित होकर बैक्ट्रिया और पार्थिया की ओर बढ़े और वहां उन्होने अपना राज्य स्थापित कर लिया। वहां से ये लोग भारत पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये।

प्रथम आक्रमणकर्त्ता शक सम्राट माउस था। ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग 20 ई.पू. में उसने भारत पर आक्रमण किया। फिर उसके पुत्र एजेस प्रथम और एजेस द्वितीय ने भी भारत पर आक्रमण कर एक बृहत् शक साम्राज्य स्थापित किया।

शकों ने भारत पर अपना अधिकार स्थापित करने के बाद भारत के साम्राज्य को प्रान्तों में विभक्त किया। एक प्रान्त का शासक क्षत्रय कहलाता था। भारत में शकों के मुख्य चार क्षत्रय थे। तक्षशिला का क्षत्रय, मथुरा का क्षत्रय, महाराष्ट्र का क्षत्रय, और उज्जैन का क्षत्रय।

कालान्तर मे पल्लवों ने पंजाब में शक साम्राज्य का अन्त किया। कुषाणों ने तक्षशिला तथा मथुरा के शक क्षत्रयों का नाश किया। सातवाहन वंश के गौमती पुत्र शतकर्णी ने महाराष्ट्र के शक क्षत्रय का नाश किया। गुप्तवंश के प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने (375 ई.-413 ई.) ने उज्जैन के शक क्षत्रय का अन्तकर-शक साम्राज्य को हमेशा के लिये अन्त कर दिया। बाद में सारे शक बौद्ध धर्म स्वीकार कर हिन्दू समाज में विलीन हो गये।

कुषाण- 150 ई.पू. के लगभग हूणों ने इन्हें चीन की विशाल दीवार के समीप वाले भूभाग से , जहां ये रहते थे, पश्चिम की ओर भगा दिया। यूह-ची जाति अपने निवास स्थान की खोज में सीर दरिया की ओर बढ़ी। वहां उपयुक्त स्थान समझकर वहां रहने वाली शक जाति को वहां से खदेड़ दिया। यूह-ची जाति से परास्त होकर शक बैक्ट्रिया और पार्थिया की ओर बढ़े।

यूह-ची जाति सीर दरिया में जम गयी।

यूह-ची जाति की पांच शाखायें (कबीले)थीं। उनमें से एक कुषाण कबीला था। ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी के अन्त तक कु षाण कबीले ने अन्य सभी चार कबीलो को पराजित करके उन पर आधिपत्य जमा लिया था। कुषाण कबीले के नाम पर पूरी जाति का नाम कुषाण पड़ गया।

इस जाति का सर्वाधिक प्रसिद्ध सम्राट कनिष्क (78 ई.-123 ई.) है। वह बहुत वीर योद्धा था। उसका शासन भारत के विस्तृत भूभाग पर था।

कनिष्क ने तक्षशिला और मथुरा के शक क्षत्रयों का अन्त किया। उसने मालवा के कुछ भाग पर भी अधिकार किया। उसका शासन भारत के विस्तृत भूभाग पर था। उसने 42 वर्ष शासन किया।

वह बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया। फिर उसने बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार-प्रसार किया। वह आज राज्य विजेता की अपेक्षा हृदय विजेता बौद्ध धर्म के अनुयायी, संरक्षक, प्रचारक के रूप में अधिक प्रसिद्ध है क्योंकि उसने अपना अधिकांश समय बौद्ध धर्म की उन्नति तथा प्रचार-प्रसार में लगाया। उसने पुराने मठो, विहारो की मरम्मत कराई। उसने अनेक नये मठ तथा विहार बनवाये। उसने चीन, तिब्बत तथा मध्यएशिया के अनेक देशों में बौद्ध धर्म के प्रचारक भेजे तथा बौद्ध धर्म का प्रचार किया। सभी कुषाण शकों की तरह बौद्ध के अनुयायी, हिन्दू हो गये।

शहडोल जिले के कई स्थानों में गौतम बुद्ध की प्रस्तर मूर्तियां तथा विकलावस्था में बौद्ध विहार मिले हैं। सम्भवत: इनका सम्बन्ध अशोक महान से लेकर कुषाण काल तक रहा हो।

कनिष्क ने अपने शासनकाल में कश्मीर के कुण्डन वन में एक बहुत बड़ा बौद्ध धर्म सम्मेलन आयोजित करवाया। इस सम्मेलन में प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु अश्वघोष भी उपस्थित थे। सम्मेलन का उद्देश्य बौद्ध धर्म के सिद्धांतो पर गहन विचार विमर्श कर उसमें आयी बुराइयों को दूर करना था। कनिष्क के अशेष प्रयासों के बावजूद भी वांछित सफलता न मिल सकी।

उसकी मृत्यु 123 ई. में हो गयी। उसके उत्तराधिकारी साम्राज्य को स्थिर न रख सके।

कुषाणों के समय में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। वे कनिष्क के समय तो उनहें कर देते थें। उनके अधीन थे। लेकिन कनिष्क की मृत्यु (123 ई.) के बाद कुषाण साम्राज्य पतन की ओर उन्मुख हो गया। इस वंश का अन्तिम शासक वासुदेव था। उसके समय में अनेक करद राज्य स्वतंत्र हो गये और अनेक राजवंश उत्पन्न हो गये। देश मे राजनैतिक अस्थिरता उत्पन्न हो गई। विदेशी आक्रमण भी होते रहे। पश्चिम की ओर से मध्य एशिया की अनेक जातियाँ पश्चिमी और उत्तरी भारत से घुसकर जम गई। इनमे शक (सिथियन) पल्हव(पार्थियन) और यवन (ग्रीक) हूण प्रमुख जातियां थीं। ये जातियां एक बार में तथा एक ही कालखण्ड में नही आयीं। इनका प्रवेश भारत में सैकड़ों वर्षो से ईसा पूर्व चौथी सदी से जत्थों में रह रहकर होता रहा। वे भारत के स्थापित राजवंशो और साम्राज्यो को छिन्न-भिन्न करके अपनी सत्तायें स्थापित करते रहे। मौर्य साम्राज्य, गुप्त साम्राज्य और वर्द्धनवंश के विस्तृत साम्राज्यों के पतन के प्रमुख कारणो मे उक्त लोगो के भारत मेसशक्त आक्रमण ही थे। भारत के प्रतापी सम्राट भी इनको निर्मूल नही कर सके।

देश मे उस समय ऐसा शक्तिशाली कोई राजा नही था जो देश में सार्वभौमिक सत्ता स्थापित कर राजनीतिक स्थिरता प्रदान कर सकता। चाणक्य जैसा राष्ट्र भक्त दूरदर्शी प्रतिभा सम्पन्न कूटनीतिज्ञ मंत्री भी किसी सम्राट को दुबारा प्राप्त नही हुआ अन्यथा देश में असंख्य छोटे-छोटे राज्यो का अस्तित्व न रहता जो आपस में अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिये लड़-लड़कर विनष्ट होते रहते। देश में बाहरी लोगों के जमने और राज्य स्थापित करने के पीछे देशी राज्यों की परस्पर फूट और आपसी वैमनस्य ही प्रमुख कारण रहा है। 'आपस की फूट बाहर की लूट' कहावत की आविष्कारक सम्भवत: तत्कालीन परिस्थितियां ही रही हैं।

ऐसी ही अराजकता की स्थिति में उत्तर प्रदेश , बुन्देलखण्ड से विदेशियों को भगाने वाला राजवंश भारशिव अस्तित्व में आया जो अपनी शक्ति और पौरुष से भारत के विस्तृत भूभाग का स्वामी बना। इस राजवंश का शासन बान्धवगढ़ में भी दीर्घकाल तक रहा।

इस राजवंश का प्रारम्भ में पद्मावती (मथुरा से लगकभग 200 किलोमीटर दक्षिण ग्वालियर में) केन्द्र था। इन्होने मथुरा से कौशाम्बी (इलाहाबाद से 48 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम यमुना के किनारे जिसे वर्तमान में कोसम कहते हैं, अतीत में कौशाम्बी महत्वपूर्ण स्थान था, वत्स की राजधानी था।) तक का प्रदेश अपने अधीन कर लिया। उनके राज्य के अन्तर्गत वर्तमान विन्ध्यांचल पर्वत का विस्तृत दक्षिणी भूभाग भी था जिसमें वर्तमान बान्धवगढ़ भी था। ये शैव मतावलम्बी थे। इस राजवंश में एक वीरसेन नाम का शासक हुआ जो बहुत प्रसिद्ध योद्धा था। उसने भारशिव वंश की बड़ी ख्याति फैलायी। भार शिवों ने बनारस में गंगा के किनारे दस अश्वमेध यज्ञ किये। उसी के कारण उस घाट का नाम दशाश्वमेध पड़ा। इस नाम से वह घाट आज भी पुकारा जाता है।

कहा जाता है कि भारशिव वंश के लोग प्राचीन नाग वंश के थे। एक विशेष घटना के कारण इनकी उपाधि भारशिव हो गई। घटना थी एक धार्मिक अनुष्ठान में राजा द्वारा शिवलिंग को सिरपर धारणा कर लेना।

कुछ दशको बाद विन्ध्य क्षेत्र में वाकाटक राजवंश का प्रभुत्व स्थापित हो गया। इस राजवंश का संस्थापक विन्ध्यशक्ति वाकाटक था जो भारशिव राजवंश वालो का सामन्त था। इसने बुन्देलखण्ड में अपना राज्य लगभग 250 ई. में स्थापित किया था।

एक समय यह राजवंश बहुत शक्तिशाली था। इसीलिये चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (375 ई.से 414 ई.) ने अपनी पुत्री प्रभावती की शादी पृथ्वीसेन के पुत्र रूद्रसेन द्वितीय के साथ कर दिया था। सन् 390 में रुद्रसेन की मृत्यु हो जाने पर प्रभावती ने अपने पुत्रों की संरक्षिका के रूप में शासन किया। धीरे-धीरे इस राज्य का भी पतन हो गया। लगभग सन् 480 ई. मे यह राज्य गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया।

गुप्त राजवंश का संस्थापक तथा प्रथम राजा श्रीगुप्त था। उसके संबंध में बहुत कम जानकारी है। इस वंश के तीसरे शासक चन्द्रगुप्त प्रथम(320 ई.से 335 ई.) इस राजवंश का प्रथम महत्वपूर्ण शासक है।

यहां यह जान लेना आवश्यक है कि भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त नाम से तीन प्रतापी महत्वपूर्ण शासक हुये हैं प्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य (ई.पू.322 से 298ई.पू.) है, दूसरे चन्द्रगुप्त प्रथम (320ई.से 335 ई.) और तीसरे चन्द्रगुप्त-

विक्रमादित्य (ई.सन् 375 ई.से 414 ई.तक) है, चन्द्रगुपत विक्रमादित्य को शकों को परास्त करने के कारण 'शकारि' और विक्रमादित्य कहा जाता था। इसने शक और कुषाण लोगो की शक्ति को निर्मूल किया था और प्राय: सम्पूर्ण भारत एक शासनसूत्र में संगठित हो गया था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की कीर्त्ति दिल्ली के समीप महरौली में एक विशाल लौहस्तम्भ पर उत्कीर्ण है जिसे उसने भगवान विष्णु के प्रति अपनी श्रद्धा को प्रदर्शित करने के लिये 'विष्णुध्वज' के रूप में स्थापित कराया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की राजसभा मे बहुत से विद्वानों विशेषज्ञो एवं कवियो ने आश्रम प्राप्त किया था जिनमें धन्वन्तरि, कालिदास, अमरसिंह, घटकर्पर आदि नवरत्न प्रमुख थे।

गुप्तकाल भारतीय इतिहास मे स्वर्णयुग के नाम से जाना जाता है। पुराणों में इस राजवंश के राज्य के विस्तार का उल्लेख है। इस राजवंश में समुद्रगुप्त (335 ई.से 375 ई.तक) चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (375 से 414 ई.तक) स्कन्दगुप्त (455 ई.से 467 ई. तक) बहुत प्रतापी, शक्तिशाली एवं राज्य विस्तारक शासक हुये है। स्कन्दगुप्त के बाद से ही इस राजवंश का पतन प्रारम्भ हो गया। गुप्त साम्राज्य सिमटता चला गया जो अन्तत: 606 ई. मे पूर्णत: समाप्त हो गया।

चन्द्रगुप्त (द्वितीय) को 'शकारि' तथा 'विक्रमादित्य' उपाधियां भी शकों को पराजित करने के कारण मिली थी। उदयगिरि (गुजरात) में एक महावाराह मूर्ति मिली है जो चन्द्रगुप्त के समय की मानी जाती है जिसमें पृथ्वी के उद्धार का दृश्य दिखाया गया है। इस कलाकृति की राजनीतिक महत्ता भी है। यह विदेशी शकों के उन्मूलन से पृथ्वी के उद्धार का प्रतीक भी मानी जा सकती है। बान्धवगढ़ में भी एक वाराह की प्रस्तर मूर्त्ति है जो गुप्तकाल की हो सकती है किन्तु कुछ लोग इसे कलचुरि शासक युवराजदेव प्रथम (915 से 945 ई.) के काल की मानते है।

गुप्तराज वंश वैष्णव धर्मावलम्बी थे। इनके शासन काल में देश में बड़ी शान्ति और समृद्धि थी। जनता सुखी थी। दूर-दूर तक व्यापारी अपना सामान लेकर जाते थे। देश का व्यापार पूर्वी द्वीपसमूह यथा जावा, सुमात्रा, बोर्नियों, तथा मध्य एशिया में मिस्त्र आदि अनेक देशों से होता था। भारतीय व्यापारी स्थल तथा समुद्री मार्ग से दूर-दूर तक जाते थे। उन दिनो बान्धवगढ़ भी उन्नत स्थिति में था। व्यापार समुन्नत स्थिति में था। व्यापारी विनाभय के दूर-दूर तक अपना

माल लेकर आते जाते थे। येसारी बातें चीनी यात्री फाह्यान[1] के यात्रा-विवरण से ज्ञात होती है। उसके यात्रा विवरण से गुप्त प्रशासन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। चीनी यात्री फाहियान सन् 405 में स्थल मार्ग से भारत आया था और 415 ई. में श्रीलंका होकर समुद्री मार्ग से चीन वापस लौट गया था। फ ाहियान के अनुसार गुप्त सम्राट के लोक कल्याणकारी प्रशासन का ही परिणाम था कि उसके शासन काल में लोग खुशहाल और समृद्ध थे। उसके यात्रा विवरण से तत्कालीन भारतीय इतिहास पर रोचक जानकारी मिलती है।

❁ ❁ ❁ ❁

गुप्त साम्राज्य के श्मशान पर वर्द्धन राजवंश का उदय हुआ। इस वंश का संस्थापक पुष्यभूर्ति था जो गुप्त साम्राज्य में थानेश्वर का सामन्त था। गुप्त शासकों के निर्बल होने पर अन्य अनेक सामन्तों की तरह उसने भी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली। उसके उत्तराधिकारी सामन्त से स्वतंत्र शासक हो गये। इस राजवंश में कई शासक हुये यथा- नरवर्द्धन, राज्यवर्द्धन, आदित्य वर्द्धन, प्रभाकरवर्द्धन, राज्यवर्द्धन, हर्षवर्द्धन, लेकिन सर्वाधिक प्रसिद्ध लोकप्रिय शासक हर्षवर्द्धन (606 ई.से 647 ई.) हुआ।

हर्षवर्द्धन के गद्दी पर बैठते समय कन्नौज में मौखरी वंश का शासन था। पश्चिमी भारत में हूणों का शासन था। मालवा में स्वतंत्र राज्य था, देवगुप्त मालवा की गद्दी पर था। ध्रुवसेन द्वितीय बल्लभी राज्य (वर्तमान सौराष्ट्र) का स्वामी था। सिन्ध स्वतंत्र राज्य था। शशांक बंगाल का शासक था। इसी तरह दक्षिण भारत में अनेक राज्य थे। हर्ष के समय की यह राजनीतिक स्थिति थी। उसने इन सब को परास्त करके अपने अधीन कर लिया। किसी का राज्य अपने में मिला लिया किसी को करद बना दिया। उसका साम्राज्य पूर्वी पंजाब, उत्तर

---

1. फाह्यान चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल में यह जिज्ञासु चीनी यात्री बौद्धधर्म-ग्रन्थों की खोज में भारत आया। वह सन् 399 ई. में अपने देश से चला और गाजी मरुस्थल पामीर पार करता हुआ खेतान के मार्ग से सन् 405 ई. में भारत पहुंचा। वह खेतान (खुतान) से गांधार, तक्षशिला, पुरुषपुर (पेशावर) फिर मथुरा, कन्नौज श्रावस्ती, कुशीनगर, वैशाली, पाटलि पुत्र, नालन्दा, राजगृह, काशी, सारनाथ आया। भारत में लगभग दस वर्ष रहकर ताम्रलिप्ति बन्दरगाह से समुद्री मार्ग द्वारा लंका पहुंचा और वहां से पूर्वी द्वीप समूह होता हुआ पुन: अपने देश चला गया।

प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा सौराष्ट्र, कच्छ, अमरकंटक से विन्ध्य पर्वत सहित गंगानदी तक फैला हुआ था। इस प्रकार वर्तमान अनूपपुर, शहडोल, उमरिया, सतना आदि अनेक जिलो के भूभाग वर्द्धन वंश के अधीन थे। हर्ष के शासनकाल में ही जिज्ञासु बौद्ध भिक्षु चीनी यात्री ह्वेनसांग[2] सन् 630 ई. में भारत आया। वह भारत में सन् 644 ई. तक रहा। सम्राट हर्ष का वह बहुत चहेता बौद्ध भिक्षु था।

ह्वेनसांग ने चीन पहुंचकर एककृति सन् 650 ई. में तैयार की। उस कृति में उसने अपनी यात्रा का विवरण दिया है तथा तत्कालीन भारत की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का जीवन्त चित्रण किया है। भारतीय इतिहास की दृष्टि से इस कृति का बड़ा महत्व है।

ह्वेनसांग[2] की कृति से तत्कालीन भारत की स्थिति की जानकारी मिलती है। उसी से पता चलता है कि सम्राट हर्ष पहले शैव थे फिर बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। लेकिन वह सभी धर्मो के प्रति आदर भाव रखते थे। वह दानवीर और शिक्षा प्रेमी थे। नालन्दा विश्व विद्यालय की उसने बड़ी सहायता की। प्रभूत आर्थिक सहायता दी। उसने विश्व विद्यालय को हर प्रकार से समुन्नत किया।

ह्वेनसांग के लिखे गये विवरण से ज्ञात होता है कि सम्राट हर्ष के शासनकाल में जनता सुखी, सन्तुष्ट थी। व्यापार समुन्नत था। करों का भार जनता पर बहुत कम था। दण्ड कठोर था। अत: अपराध कम होते थे।

---

2. ह्वेनसांग- फाह्यान के लगभग सवा दो सौ वर्ष बाद हेनसांग भारत आया। उसका जन्म चीन के होनान-नगर के समीप 600 ई. में हुआ। वह बचपन से ही बहुत जिज्ञासु था। तेरह वर्ष की आयु में उसने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और बीस वर्ष की आयु में बौद्ध भिक्षु बन गया। बौद्ध धर्म का सागोपांग सम्यक् जानकारी प्राप्त करने के लिये सन् 629 ई. में भारत आने का निश्चय किया। वह सन् 630 ई. में कश्मीर पहुंचा। उसे मार्ग में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। यात्रा बड़ी असुरक्षित और कंटकाकीर्ण थी।

कश्मीर से वह मथुरा, थानेश्वर होता हुआ कन्नौज पहुंचा। हर्ष ने उसकी बड़ी आव-भगत की। इसके बाद वह गया, कपिलवस्तु आदि स्थानो से होता हुआ नालन्दा पहुंचा। उसने भारत में रहकर बौद्धग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। कन्नौज में हर्ष द्वारा आयोजित बौद्ध सम्मेलन में वह अध्यक्ष रहा। वह बहुत योग्य था। वह सन् 644 ई. में स्थल मार्ग से चीन वापस चला गया। मार्ग में लुटेरों ने उसे बहुत परेशान किया। फाह्यान शिक्षा और साहित्य प्रेमी था।

लोग ईमानदार थे। घरों में ताले लगाने की प्रथा कम थी। पर्दा-प्रथा नहीं थी। लोगों का जीवन सरल और सादा था। लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। वे सुखी और सम्पन्न थे। अनेक वस्तुओं का आयात-निर्यात किया जाता था। चांदी के सिक्के प्रचलित थे। भारत में कई धर्म प्रचलित थे। ब्राह्मण धर्म उन्नत दशा में था। बौद्ध धर्म भी प्रचलित था। सम्राट स्वयं बौद्ध-धर्म का अनुयायी था।

हर्ष के शासनकाल में सभी धर्मावलम्बी बिना किसी भय एवं रोक टोक के अपने विश्वास के अनुसार जीवनयापन करते थे। हर्ष की उदारता, सदाशयता, दयालुता का लाभ सभी धर्मावलम्बी उठाते थे। वह शैव से बौद्ध हुआ था लेकिन दान वह बौद्ध-भिक्षुओं एवं ब्राह्मणों को समानरूप से देता था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि वह हर पांचवें वर्ष प्रयाग आता था और महीनों दीन-दुखियों, ब्राह्मणों, बौद्ध-भिक्षुओं तथा जरूरतमन्दों को दान करता था। एक बार तो वह दान करते - करते अपने पहिनने के वस्त्र भी दान कर दिया था तब उसकी बहन राजश्री ने उसे उनके पुराने वस्त्र पहिनने को दिया था। पांच वर्ष में राजकोष में जो धन एकत्रित हो जाता था,उसे वह प्रयाग आकर दान कर देता था।

सम्राट हर्ष ने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिये बौद्ध-भिक्षुओं को देश के सुदूरवर्ती स्थानों तथा देश से बाहर भी भेजा। उसने अनेक विहार,स्तूप तथा धर्मशालाओं का निर्माण करवाया। उसके शासन काल में जैन भी प्रसन्न थे, ब्राह्मण धर्मावलम्बी भी प्रसन्न थे क्योंकि उसने अपनी प्रजा में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया था। उसने समस्त प्रजा का हित चिन्तन किया। प्रजा के कल्याण के लिये उसने आवश्यक कदम उठाये। सही अर्थों में वह उच्चकोटि का धर्म निरपेक्ष आदर्श शासक था। उसमें वैदिक संस्कृति के गहरे संस्कार थे। वह श्रेय मार्ग का उत्कट अविचल पथिक था।

हर्ष भारत का अन्तिम हिन्दू सम्राट था। उसकी मृत्यु सन् 647 ई. में हो गई। उसकी कोई सन्तान नहीं थी। अत: उसकी मृत्यु के बाद उसके साम्राज्य का पतन हो गया और भारत में फिर अराजक स्थिति उत्पन्न हो गई और अराजक शक्तियां प्रबल हो उठीं।

हर्षवर्द्धन के पूर्व से ही देश में विदेशी आक्रमण हो रहे थे। हर्षवर्द्धन के समय में विदेशी आक्रमण तेज हो गये। उसकी शक्ति का बड़ा क्षय किया।

हूणों के दल के दल टिड्डीदल की तरह अन्दर की ओर घुसते चले आ रहे थे। हूण बर्बर, असभ्य, लड़ाकू और युद्धप्रिय थे। उनके वेग को भारत के शासक रोक पाने में असमर्थ रहे। उनके अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये। वर्द्धन साम्राज्य के अनेक सामन्त स्वतंत्रत राज्य की घोषणा करके स्वतंत्र शासक बन गये।

❁ ❁ ❁ ❁

अब तक जो वर्णन किया गया है वह उत्तर भारत के उन राजवंशो का था जिनका नियंत्रण बान्धवगढ़ सहित मध्यभारत के व्यापक भूभाग पर था। उत्तर भारत के व्यापारी मथुरा, कौशाम्बी, होकर उज्जैन तथा अन्य व्यापारिक ठिकानों तक बान्धवगढ़ होकर जाते थे। अतीत से बान्धवगढ़ का महत्वपूर्ण स्थान था। लेकिन उत्तर भारत के सम्राटों ने इस भूभाग में प्रत्यक्ष शासन नहीं किया। वे यहां के शासकों को अपने अधीन करके करद बना देते थे। क्षेत्रीय शासक अन्दरूनी मामलों में अपने प्रशासन में स्वतंत्र रहते थे। इस भूभाग में पश्चिमोत्तर भारत की तरह अधिक राजनैतिक उथल-पुथल तथा अराजक स्थितियां नही उत्पन्न हुई। पश्चिमोत्तर भारत का कोई भी राजवंश पांच सौ वर्षो तक लगातार शासक नहीं रह सका। मध्य भारत की स्थिति अनेक कारणों से इससे भिन्न रही।

यहां पर हम ऐसे दो राजवंशों का उल्लेख करना चाहेंगे जिनका शासन उत्तर भारत के किसी भी राजवंश से बहुत अधिक समय तक इस क्षेत्र मं रहा। यों तो इन दो राजवंशों यथा गोण्ड राजवंश एवं बाघेल वंश के अतिरिक्त बान्धवगढ़ एवं उसके आस पास के क्षेत्र पर कलचुरी, भर, लोधी, कुरुवंशी आदि जातियों का भी शासन रहा। लेकिन इनके शासको और शासनकाल के सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से अधिक ज्ञात नहीं है। अनेक ऐसे सबूत अवश्य हैं जिनसे यह ज्ञात होता है, कि किसी समय भर जाति का व्यापक भूभाग में शासन था। भरहुत, बरगढ़ (भोरमुक्त) भर जाति की स्मृति अव भी संजोये है। उनके शासन के अन्तर्गत बान्धवगढ़ भी था। कलचुरियों का भी शासन इस भूभाग में लम्बे समय तक रहा। लोधी एवं कुरुवंशियों का शासन भी बान्धवगढ़ मे अल्पकाल के लिये रहा। हम प्रसंगानुसार इनकी चर्चा यदा-कदा आगे करते रहेंगे। हम यहां सर्व प्रथम गोण्ड राजवंश के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख कर दें।

मध्य भारत में गोण्डों का शासन यत्र-तत्र अनेक स्थानों में रहा। ये छोटे-छोटे शासक थे जो कालक्रम से मिटते और बनते रहे। लेकिन गोण्डवंश के एक-

शासक , जिनका शासन प्रारम्भ में गढ़ा पर था जिनका नाम यादवराय था, इनके उत्तराधिकारी भारत के ज्ञात इतिहास में सर्वाधिक काल तक शासक रहे हैं। यादवराय इस वंश के गढ़ा के प्रथम शासक थे। 'गणेश नृप वर्णनम्' के तीसरे पद्य में लिखा है कि वे वैशाख शुक्ल पूर्णिमा सम्बत् 215 के दिन गद्दी पर बैठे। (देखें- 'गढ़ामण्डला के गोण्ड राजा") लेखक रामभरोसे अग्रवाल पृष्ठ 39, प्रकाशक गोंण्डी पब्लिक ट्रस्ट, मण्डला द्वितीय संस्करण)अग्रवाल साहब ने बहुत अनुसन्धान के बाद लिखा है कि " गोण्ड राजवंश गढ़ा के शासक थे और कलचुरि राजवंश त्रिपुरी के शासक थे। दोनों के बीच लगभग 8 किलोमीटर का फासला है। कलचुरियों ने अपने साम्राज्य का विस्तार पहिले किया और गढ़ा के साम्राज्य का विस्तार बाद में हुआ। इस राजवंश में तेरसठ शासक हुये और सम्बत् 218 यानीसन् 161 ई. से सम्बत् 1840 यानी सन् 1763 ई. तक यानी 1602 वर्षों तक शासन किया। प्रथम शासक यादवराय और अन्तिम तिरसठवें शासक सुमेद साहि हुये। इस राजवंश में संग्राम साहि, दलपति साहि, महारानी दुर्गावती आदि कुछ शासक बहुत प्रसिद्ध हुये। प्रारम्भ में इनका राज्य गढ़ा-कोटा तक सीमित था किन्तु संग्राम साहि (1518-1568) जो इस वंश के अड़तालिसवे शासक थे, अपने राज्य की सीमायें काफी विस्तृत की। इन्होने अनेक छोटे-छोटे राजाओं को हराकर करद (कर देने वाले) बना लिया। पराजित राजाओं के आन्तरिक शासन में उन्होने हस्तक्षेप नहीं किया। इनके पुत्र दलपतिशाह ने सुव्यवस्था कायम की। इसी नीति की नकल अकबर ने किया। अकबर को बहुत सफलता मिली। उसने भारत में सुदृढ़ मुगल साम्राज्य की पक्की नींव डाली।

गोण्ड राजवंश का शासन संग्रामशाह के समय विस्तृत भूभाग पर था। महाराजा संग्रामशाहि का राज्य विस्तार 300 मील (यानी लगभग 480 किलीमीटर) लम्बा और 225 मील (यानी 360 किलोमीटर) चौड़ा था। यानी 67500 वर्गमील अर्थात् 172400 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला था। रानी दुर्गावती की अकबर से पराजय के बाद इस साम्राज्य का अंगविच्छेद हो गया। चन्द्रशाह (सन् 1601 से 1624 ई.) ने मुगलसम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली और उसे नजराना में दस किलो सोना तथा उपजाऊ और अधिक आमदनी का क्षेत्र भी दे दिया। मुगल दरवार तो यही चाहता ही था। अन्दरूनी मामलों में वह स्वतंत्र रहे। किन्तु मुगल शासक के करद हो गये।

❁ ❁ ❁ ❁

प्रारम्भ में मण्डला में कलचुरियो का शासन था। नागवंशियों के राज्य का पता धानूपण्डा की कथा से मिलता है। लाँजी में कलचुरियों का राज्य था। उसके बाद गोण्डों का राज्य हुआ। कलचुरी लांजी से रतनपुर (वर्तमान में छत्तीसगढ़) चले गये। लांजी वाले गोण्ड राजाओं के अधिकार में मण्डला, मारूगढ़ और गढ़ा भी आ गया। गोण्ड राज्य का विस्तार जिस क्षेत्र में हुआ, उस क्षेत्र में कलचुरि चन्देल और नागवंशी तीनों का कहीं किसी का और कहीं किसी का राज्य था। गोण्ड राज्य ने कोई संगठन नहीं बनाया था। बहुत से छोटे-छोटे शासक थे जैसे बेरंगा, देवहारगढ़, देवरगढ़, हर्राभाट, पाठा, मगरदहा अन्य और भी अनेक गढ़ थे। ऐसे समय में यादव राय ने सर्वेपाठक की सहायता से गढ़ा में एक छोटे राज्य की नींव डाली थी।

प्रारम्भें गढ़ा का राज्य बहुत छोटा था। छोटे रूप में ही यह राज्य लगभग ग्यारह सौ वर्षो तक बना रहा। इस वंश के अड़तालिसवें शासक संग्रामशाहि ने अनेक राज्यों को परास्त कर अपने राज्य की सीमाओं को बहुत विस्तृत किया।

महाराजा संग्राम शाह के बहुत पहले अनेक छोटे तथा बड़े गोण्डराजा वर्तमान मानिकपुर (उ.प्र.) से लेकर नर्मदा नदी के दक्षिण तक फैले थे। त्यौथर (जिला रीवा) में टमसनदी के किनारे भी भग्नावशेष स्थिति में पत्थरों से बना दुर्ग जिसे राजमहल भी कह सकते है ; स्थित है। किम्बदन्ती के अनुसार वह गोण्ड राजाओं का राजमहल था जो किसी समय बेणुवंशियों के आधिपत्य में हो गया। वेणुवंशियों का उस क्षेत्र में कुछ काल तक शासन रहा जो बाद में बाघेलों के अधीन हो गया। वेणुवंशियों का ठिकाना जिला रीवान्तर्गत भलुआ था।

गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री ने 'रीवाराज्य का इतिहास' में लिखा है कि 'रीवा राज्य की भूमि में एक लम्बे समय तक वाकाटकों का प्रभुत्व रहा है। वाकाटक ब्राह्मण जाति के थे। इनका आदि स्थान ओरछा राज्यान्तर्गत 'वकाट' गांव था। वहीं से इनका अभ्युत्थान हुआ और ये लोग राज्य प्रतिष्ठा को प्राप्त हुये जो बाद में भर क्षत्रियों से विवाह वगैरह करके अपने को क्षत्रिय बना डाला।

वर्तमान बालेन्दु क्षत्रियों का यही पुराना 'वाकाटक' घराना है। इनकी राजधानी बाघेलों के आने के बहुत पहले 'बान्धवगढ़' थी। कलचुरियों से खटपट होने कारण उन्हें अपनी राजधानी 'बान्धवगढ़' से हटानी पड़ी। उस समय -

बान्धवगढ़ पर लोधी भी अपना प्रभुत्व समझते थे। अत: अधिकार और प्रभुत्व को लेकर कलचुरियों और लोधियों में संघर्ष होता रहता था। दुर्ग पर कभी लोधियों का तो कभी कलचुरियों का अधिकार हो जाता था। भाग्य से जब यह दुर्ग सोमदत्त नाम के कलचुरि शासक के हाथ में आया तो उसने उभरती हुई बाघेलशक्ति के शासक करणदेव (सन् 1188-1203 ई.) के साथ अपनी पुत्री पद्मकुँवरि का विवाह कर दिया और दहेज में बान्धवगढ़ का किला तथा आस-पास का भूभाग दे दिया। करणदेव व्याघ्रदेव के पुत्र थे। व्याघ्रदेव के नाम से इनके वंशजो को बाघेल कहा जाने लगा। व्याघ्रदेव गुजरात से अपने साथियों के साथ लगभग सन् 1175 ई. में चित्रकूट पहुंचे थे। सौभाग्य उनके आगे-आगे चल रहा था । इसीलिए उन्हें मरफा नाम का दुर्ग मिल गया जिस पर किसी समय चन्देलों का कब्जा था। ऐसा लगता है कि वह खाली किला जो निर्जन था किसी योग्य एवं सामर्थ्यवान व्यक्ति की बाट जोह रहा था। व्याघ्रदेव ने उस निर्जन दुर्ग को अपना अड्डा बनाया। उन्हें अनायास सुरक्षित स्थान मिल गया। कुछ समय बाद जब उन्हें आसपास के शासकों की शक्ति और स्थिति का ज्ञान हो गया तो उन्होंने राज्य निर्माण और विस्तार के लिये कालिञ्जर को तत्कालीन भर शासक से छीन लिया। पड़ोस के मण्डीहा राज्य के रघुवंशी शासक को पराजित कर उनका राज्य प्राप्त कर लिया। गहोरा में लोधियों का राज्य था, व्याघ्रदेव ने उसे भी जीत लिया। उस समय तरौहा में मुकुन्ददेव चन्दावत परिहार का शासन था। उनके एक मात्र पुत्री सिन्दूरमती थी। उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह व्याघ्रदेव के साथ कर दिया और अपना राज्य भी उन्हें सौंप दिया। व्याघ्रदेव की शक्ति में अब काफी वृद्धि हो गयी थी। अत: उन्होने परदवां और तरिहार प्रदेश भी जीत लिया।अपनी राजधानी गहोरा बनायी।

व्याघ्रदेव को 'सिन्दूरमती' परिहारिन रानी से दो पुत्र मिले। बड़े पुत्र का नाम कर्णदेव और छोटे का कन्धरदेव था। कर्णदेव को गहोरा और कन्धर देव को कसौटा और परदमा मिले। व्याघ्रदेव का सन् 1188 ई. में निधन हो गया। लगभग ग्यारह-बारह वर्ष के अन्दर व्याघ्रदेव ने चित्रकूट के आस-पास का विस्तृत भूभाग जीतकर एक नये राजवंश- बाघेलवंश के संस्थापक बने जो देश की स्वाधीनता तक यानी 15 अगस्त 1947 ई. तक यह राजवंश शासक बना रहा। व्याघ्रदेव के पुत्र कर्णदेव बहुत वीर, पराक्रमी निकले। उन्होने विरासत में प्राप्त राज्य की सीमाओं को बहुत विस्तार दिया। उन्होने अनेक तत्कालीन शासकों को पराजित कर -

उनके राज्य को छीनकर अपने राज्य में मिला लिया। इसी राजवंश के बहुत प्रतापी,पराक्रमी और दिग्विजयी शासक वीरसिंह (सन् 1500-1540 ई.) हुये। उन्होनें भरों को अपने अधीन किया। उनके बाद फिर इस राजवंश में कोई शासक इतना वीर नहीं हुआ। उनके विस्तृत राज्य की सीमा इस दोहे में परिलक्षित है:-

उत्तर सीमा सईलौं, पश्चिम नदी धसान।
पूरब हद्द बिहार लौं, दक्षिण बौद्ध प्रमान॥

इस तरह मध्यभारत में दो राजवंश- गोण्ड एवं बाघेल अगल-बगल दीर्घकाल तक अस्तित्व में रहे। कालान्तर में गोण्ड राजवंश के पतन के बाद उनके राज्य के सिंहवाड़ा, धरहर, मुण्डा, बसही, मनौरा और गिरारी इलाके रीवा राज्य (बाघेलवंश) की देख-रेख में आ गये। फिर बीच में ये इलाके नागपुर के भोंसला राजाओं के नियंत्रण में लगभग बीस वर्षों (1807 से सन् 1826) तक रहे। मराठों के पतन के बाद ये क्षेत्र अंग्रेजों को प्राप्त हो गये। फिर सन् 1860 ई. में चन्दिया,सोहागपुर और सिंहवाड़ा इलाके के भूभाग अंग्रेजों से महाराजा रघुराज सिह (रीवा-राज्य) को प्राप्त हुये। इनमें 'सिंहवाड़ा' का इलाका प्रमुख था। 'सिंहवाड़ा' के इलाकेदार को रीवाराज्य की ओर से 'राजा' की उपाधि प्राप्त थी क्योंकि यह मण्डला गोण्ड राजवंश का प्रमुख अंग था। इनकी राजधानी माहिष्मती थी जो नर्मदा के तट पर बसी है इसका आधुनिक नाम 'मण्डला' है।

रामभरोस अग्रवाल ने गोण्डवंश के सम्बन्ध में लिखा है मैने "रावनवंसी" शब्द पर से अनुमान लगाया है कि गोण्ड जाति ब्राह्मण है और शैव हैं। 'गढ़ेश नृपवर्णनम्' से स्पष्ट है कि गोण्ड राज्य के संस्थापक यादवराय कच्छवाह राजपूत थे।"

संग्रामसाहि के बाद दलपतिसाहि राजा हुये। इनका शासन काल सन् 1530-1548 तक रहा। पंडित गणेशदत्त पाठक ने लिखा है कि इनके दरवार में बीरबल नौकरी की तलाश में आये। उनको नौकरी मिली। एक समय बीरबल ने पच्चीस हजार रुपयों की सामग्री दान,करादी। राजा ने बीरबल को खर्च देकर विदा कर दिया। वे कुछ वर्ष बान्धवगढ में विताकर दिल्ली चले गये। अपने भाग्यबल से अकबर के कृपापात्र बने। (उक्त पुस्तक पृष्ठ 51)

गोण्ड राजवंश के शासनकाल में प्रजासुखी थी। राजा सज्जन थे, उदार थे। धर्मानुरागी थे। राजा के हृदय में प्रजा के प्रति सहानुभूति थी। प्रजा भी राजा -

के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखती थी। दोनों के बीच धर्म प्रेम था। राजा में अपनी मान और स्वाभिमान की रक्षा करने का उत्साह था। राजा एवं प्रजा के पास सात्विक कमाई का धन था। राजा में वैभव था। राजा गो, ब्राह्मण और साधुओं के प्रति आदर भाव रखते थे। वे सभी हिन्दू देवी-देवताओं को मानते थे। आज भी गोण्ड इन्हे मानते हैं।

❁ ❁ ❁ ❁

उत्तर भारत के उन प्रमुख राजवंशों का संक्षिप्त वर्णन पूर्व पृष्ठों में किया गया है जिनका बान्धवगढ़ पर भी न्यूनाधिक मात्रा में नियंत्रण रहा है। उस काल में आवागमन एवं संचार व्यवस्था की स्थिति अच्छी नहीं थी। आजकल जैसी सड़को और वाहनों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अत: दूरस्थ अंचलों पर प्रभावी नियंत्रण सरल तथा सहज नहीं था। इसीलिये केन्द्रीय शक्ति के कमजोर पड़ते ही उसके अधीन राजे, सामन्त अथवा महत्वाकांक्षी सेनाधिकारी स्वतंत्र हो जाते थे और शासक बनकर नया राजवंश चला देते थे। एक राज्य के खण्डहर अथवा अवसान पर दूसरा राज्य उठ खड़ होता था, यह दीर्घकाल से चली आ रही परम्परा रही है नन्दवंश के स्थान पर मौर्यवंश, मौर्यवंश के स्थान पर शुंगवंश, कण्ववंश, फिर गुप्त वंश, फिर वर्द्धन वंश ऐसे ही एक दूसरे के अवसान पर अस्तित्व में आये हैं। उत्तर भारत के प्रसिद्ध राज्यवंशों के विस्तृत साम्रज्य के अन्तर्गत उत्तर भारत का विस्तृत भूभाग और विन्ध्यांचल के पार नर्मदा नदी तक का सम्पूर्ण भूभाग शामिल रहता रहा है, उस काल में राज्यों की सीमायें निरन्तर घटती-बढ़ती रही थीं। इन साम्राज्यों के अन्दर अनेक छोटे-छोटे राज्य अस्तित्व में थे जो अन्दरूनी मामलों में परिस्थिति के अनुसार न्यूनाधिक मात्रा में स्वतंत्र रहते थे। उन राज्यों की स्थिति बहुत कुछ ब्रिटिश भारत के देशी राज्यों के समान थी। वृटिश शासनकाल में भारत में लगभग 562 देशी राज्य थे, उन पर अंग्रेजों का पूर्ण नियंत्रण था। वे अनेक शर्तों से बंधे थे। लेकिन आन्तरिक प्रशासन में वे काफी मात्रा में स्वतंत्र थे। बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति मौर्य तथा उसके बाद शुंग, गुप्त, वर्द्धन, भारशिव, वाकाटकों आदि साम्राज्यों के अधीन राज्यों की भी रही है।

चूँ कि इतिहास में मुख्यत: ऐसे राजवंशों का उल्लेख है जिनका शासन विस्तृत भूभाग में रहा है, छोटे-छोटे शासकों/राज्यों का उल्लेख क्षेत्रीय स्तर पर ही हुआ है लेकिन वह भी सबका नही है। हमारे देश में इतिहास लेखन पर बहुत-

कम ध्यान दिया गया है। मौर्य साम्राज्य से लेकर वर्द्धन साम्राज्य तक की जानकारी तथा रोचक सामग्री शिलालेख, गुहालेख यात्रियों के वर्णन, पुराण आदि से तथा कुछ दरबारी कवियों से ही मिलती हैं। राज्याश्रित कवियों एवं लेखकों के वर्णन तत्कालीन शासक-शासन एवं समाज पर जानकारी तो देते हैं लेकिन ऐसी जानकारियां पर्याप्त तथा वांछित मात्रा में नहीं हैं, जनसाधारण की कठिनाइयों, परेशानियों आदि का उल्लेख नगण्य है जो अकाल,बाढ़,भूकम्प,अग्नि,आदि अन्यान्य कारणों से उत्पन्न होती रही है। जनता की कठिनाइयों, महामारियों का आर-पार नही था क्योंकि सारी चोट उसी पर पड़ती थी। सभी प्रकार के आघात लूट-पाट आदि का शिकार वही होती थी । आक्रमण के समय उसकी फसले जला दी जाती थीं, पशु हड़प लिये जाते थे। हर प्रकार की लूट और अत्याचार का शिकार वही होती थी। राजनीतिक अस्थिरता और विप्लव के समय उसकी स्थिति बड़ी दयनीय और शोचनीय हो जाती रही है। लेकिन उसके (जनता) सम्बन्ध में सभी शिलालेख और दस्तावेजी जानकारियां नगण्य है। जनसाधारण की जीविका का साधन मुख्यत: कृषि रहा है, कृषकों को तो सदैव ही चारागाह समझा जाता रहा है। देश की आजादी के बाद से कृषकों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ है। उनके स्वाभिमान की रक्षा हुई है। लेकिन आदिकाल से लेकर देश की आजादी तक कृषकों की स्थिति सामान्यत: बहुत बुरी रही है। यद्यपि साम्राज्यों के उत्थान और पतन में उनकी भूमिका प्रभावी रही है।

दस्तावेजी सामग्री के अभाव में जनता से सम्बन्धित अनेक प्रश्न अनुत्तरित रह जाते है-

अभी तक बान्धवगढ़ के सम्बन्ध में यत्र तत्र उल्लेख किया गया है। यह उत्तर भारत के सम्राटों के अधीन भूभाग होने के सन्दर्भ में किया गया है। अब यहां किले के सम्बन्ध में थोड़ा विचार कर लिया जाय।

--oo--
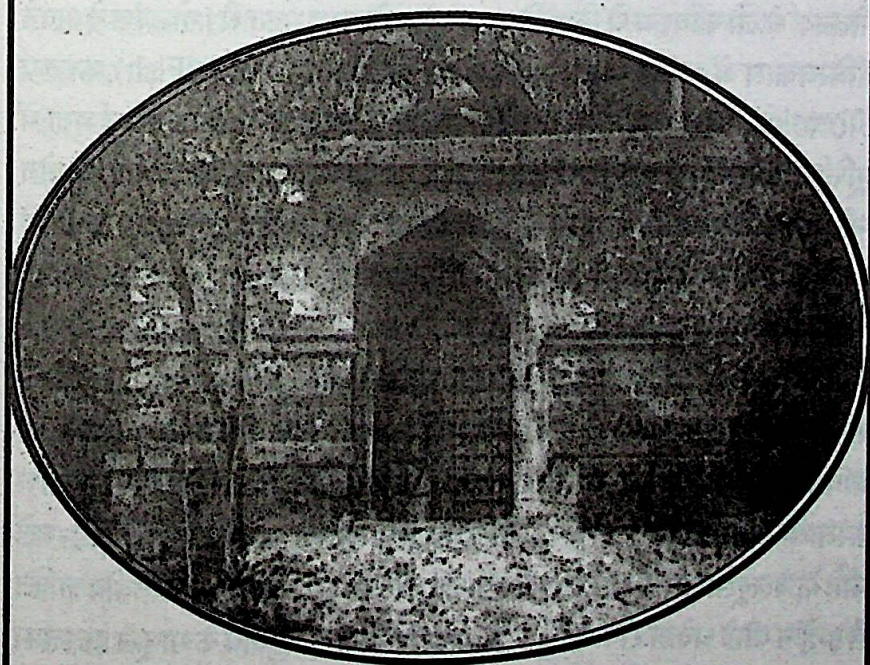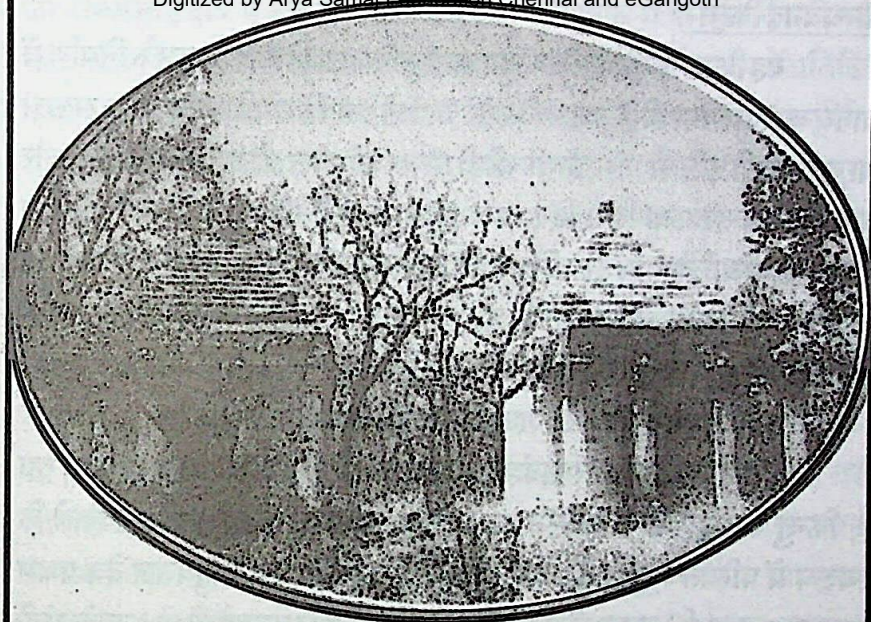
बान्धवगढ़ का गेट

बान्धवगढ़ किला-

यह किला प्रागैतिहासिक युग का प्रकृति द्वारा निर्मित है। इसके निर्माण में मानव का हाथ कम ही है उत्तर की ओर जहां से इसकी चोटी पर चढ़ा जा सकता था सुरक्षा की दृष्टि से एक ऊँची चौड़ी पत्थर की ठोस दीवाल बना दी गई और एक विशाल दरवाजा लगा दिया गया। दरवाजा (gate) आज "कर्ण द्वार" या "करण दरवाजा" के नाम से जाना जाता है इससे यह ध्वनित होता है कि इसका निर्माण कर्ण नामक किसी व्यक्ति द्वारा सुदूर अतीत में किया गया है। प्रश्न यह उठता है जो बहुत स्वाभाविक है कि कर्ण कौन थे ?

आइये, आगे बढ़ने से पहले इस पर विचार करलें,

इस क्षेत्र में अनेक राजवंशों का शासन अलग-अलग काल खण्ड में रहा है, किन्तु कलचुरियों के शासन काल (सन् 600 से 1200 ई.) में इस किले के स्वरूप में परिवर्तन हुआ है, इस राजवंश के आठवें शासक युवराज देव प्रथम (सन् 915-945 ई.) बहुत वीर, पराक्रमी, दूरदर्शी और कलाप्रेमी थे। उनके मंत्री गोल्लक थे जो कायस्थ थे। वह विष्णु भगवान के परम भक्त थे। गोल्लक ने अपने मंत्रित्वकाल में अनेक प्रस्तर मूर्त्तियां बनवायी जिनमें मत्स्य (Fish), कच्छप (Tortoise), वाराह (Boar) तथा शेषशायी भगवान विष्णु की लेटी हुई मुद्रा में मूर्त्तियां मुख्य हैं। किले के ऊपर निर्मित दो विशाल तालाब, जिन्हें क्षेत्रीय लोग 'नाँद' और माँद के नाम से पुकारते हैं, उन्हें "रानी तालाब" तथा "बाबा तालाब" भी कहते हैं, ये तालाब भी कलचुरि शासकों की ही देन हैं, इनके निर्माण में गोल्लक का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इसी राजवंश के तेरहवें शासक कर्णदेव (सन् 1041 से 1073 ई.) ने किले को सुरक्षित तथा अभेद्य बनाने का कार्य किया। उन्होने आक्रमणों के खतरे को भांपकर किले की उत्तरी सीमा पर चट्टानों की ऊँची-चौड़ी दीवाल का निर्माण करवाया और एक विशाल दरवाजा लगवाया। इस विशाल दरवाजे में बड़े-बड़े लोहे के बल्लूसा इस ढंग से जड़वा दिये कि कोई भी हाथी, घोड़े या मानवीय शक्ति से इन्हें न पीछे धकेल सके न तोड़ ही सके। दरवाजे पर सुरक्षा के माकूल इन्तजाम भी किये गये। इन्ही के नाम से " करण दरवाजा" पुकारा जाने लगा। आज भी यह दरवाजा इन्हीं के नाम से पुकारा जाता है। इन्ही के पौत्र गोकर्ण (1120-1153 ई.) के शासन काल में यक्ष यक्षणियों की अनेक मूर्त्तियाँ पत्थरो पर कुरेदी गई-

जो बान्धवगढ़ क्षेत्र में अब भी किसी पेड़ के तने के बगल में या भूमि में दबी पड़ी यदा-कदा मिल जाती है सम्भवत: इसी काल की ज्वालामुखी आश्रम में प्रतिष्ठित ज्वालामुखी देवी तथा गोवर्दे में सोननदी के किनारे चतुर्भुज भगवान की मूर्त्तियां है, ज्वालामुखी का मन्दिर भी गोल्लक के काल का ही प्रतीत होता है। ज्वालामुखी का जीर्णोद्धार और बाद में ज्वालामुखी के नाम पर आश्रम विद्यालय जो वर्तमान में ज्वालामुखी शा.पू.मा.विद्यालय के रूप में संचालित है ,आवासीय विद्यालय है, आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा संचालित है, इस क्षेत्र के प्रसिद्ध स्वाधीनता सेनानी श्री छोटेलाल पटेल ने अपने गृहग्राम सिगुड़ी में इस विद्यालय का शुभारम्भ किया था। यह विद्यालय उनके आवास पर आठ अगस्त 1953 को प्रारम्भ हुआ था , तत्पश्चात् उस स्थान पर जहां आज विद्यालय भवन है, जब पांच छ: बड़ी झोपड़ियां बन गई, बच्चों के बैठने की व्यवस्था हो गई तब तत्कालीन गवर्नर विन्ध्य प्रदेश, श्री सन्थानम एवं विन्ध्यक्षेत्र के प्रथम मुख्यमंत्री पं. शम्भूनाथ शुक्ल के द्वारा विद्यालय का विधिवत् उद्घाटन कराकर वर्तमान स्थान में स्थानान्तरित करा दिया। इस संस्था के जनक और ज्वालामुखी मन्दिर के प्रथम उद्धारक श्री छोटेलाल पटेल आजीवन इस स्थान से आत्मिक रूप से सम्बद्ध रहे। ज्वालामुखी का पुनरूद्धार एवं मन्दिर परिसर का निर्माण मानपुर के उत्साही धर्म प्रिय लोगो ने सन् 2006 में कराया। इस मन्दिर का सौन्दर्यीकरण हो रहा है।

सन् 1180 ई. के आसपास इस क्षेत्र में बाघेल राजवंश एक शक्ति के रूप में तेजी से उभर रहा था। उस समय इस किले के स्वामित्व को लेकर लोधियों और कलचुरियों में विवाद था। कलचुरियों की शक्ति कम होने एवं अन्यान्य कारणों से लोधियों की शक्ति में वृद्धि होने से वे किले में अपना अधिकार जमाने लगे थे। सम्भवत: कलचुरियों ने उन्ही से बान्धवगढ़ पूर्व में छीना था। सत्ता सदैव से संघर्ष की जन्मदाता रही है अत: लोधियों ने अपने खोये हुये किले और राज्य को हस्तगत करने के लिये संघर्ष छेड़ा। उन्हें सफलता मिली। लेकिन यह दुर्ग उनके अधिकार में बहुत समय तक नहीं रह सका। सौभाग्य से यह पुन: कलचुरी नरेश सोमदत्त के कब्जे में आ गया। उनके मात्र एक पुत्री थी। उनका नाम पद्मकुँवरि था। विवाहयोग्य थी। उन्होंनें उसकी शादी कर्णदेव (व्याघ्रदेव के ज्येष्ठ पुत्र) से कर दी और दहेज में बान्धवगढ़ का किला तथा अपना पूरा राज्य जिसका क्षेत्रफल वर्तमान विकासखण्ड मानपुर के क्षेत्र से कुछ कम ही था, दे दिया। कर्णदेव बहुत-

पराक्रमी,वीर और महत्वाकांक्षी थे। उन्होंने लोधियों को इस क्षेत्र से खदेड़कर अपनी सत्ता स्थापित की और बान्धवगढ़ को अपनी द्वितीय राजधानी बना लिया। 1568 ई. तक गहोरा[1] प्रथम राजधानी के रूप में बना रहा, कालान्तर में कर्ण दरवाजा के निर्माता इन्हीं बघेल शासक को माना जाने लगा क्यो कि इस राजवंश का शासन इस क्षेत्र में लगभग सात सौ वर्षो तक रहा।

गहोरा कर्वी जिला बांदा (उत्तर प्रदेश) से लगभग 16 किलोमीटर दूर है। गहोरा राज्य के उत्तरी भाग की और बान्धवगढ़ राज्य के दक्षिणी भाग की राजधानी हो गया। बान्धवगढ़ को इस राजवंश की राजधानी रहने का गौरव सन् 1617 ई. तक रहा।

बान्धवगढ़ पर बाघेलों की सत्ता स्थापित हो जाने के बाद इसदुर्ग पर पांच आक्रमण हुये। माण्डू के शासक परमार्दिदेव के सेनापति ऊदल ने 1193 ई.में इस किले को हस्तगत करने के लिये आक्रमण किया, लेकिन असफल रहे।

अलाउद्दीन खिलजी ने 1305-6 ई. में, सिकन्दर लोदी ने 1496 व 1499 में, इब्राहीम सूरी (शेरशाह सूरी का भतीजा) ने 1555 में और अन्तिम आक्रमण पात्रदास (अकबर का प्रतिनिधि ने 1596-97 में किया। पात्रदास का उल्लेख सन्दर्भ वश आगे भी किया जायेगा।

सभी आक्रमणकारी बान्धवगढ़ पर कुछ सप्ताहों से लेकर महीनों तक घेरा डाले रहे। अन्दर घुसने के प्रयास करते रहे, लेकिन किसी आक्रमणकारी को अपने प्रयासों में वांछित सफलता नहीं मिली। आक्रमणकारियों के घेरेवन्दी से किले के अन्दर रहने वालों को बहुत कठिनाइयों और परेशानियों का सामना करना पड़ता रहा। आक्रमणकारियों ने किले के बाहर, किले के आसपास बसे गांवों और वस्तियों को नष्ट करते रहे। आबादियों को उन्मूलित करते रहे। फसले बर्बाद करते रहे, लोग घर-द्वार छोड़-छोड़ भग जाते रहे, अन्त में वे भी हार मानकर अपना घेरा उठाकर वापस लौट जाते रहे, किन्तु इनके अत्याचार, शोषण और लूट-पाठ से बान्धवगढ किले के आस- पास के गांव और फुटकर बस्तियां नेस्तनाबूद हो गईं। उनमें से कुछ के नाम अब भी राजस्व रिकार्ड (Revenue record)-

---

1. गहोरा- मुगल सम्राट अकबर (1555 ई.से 1605 ई.)ने बाघेल शासक रामचन्द्र (सन् 1555 से 1591 ई.) के राज्य के पश्चिमोत्तर भाग गहोरा और कसौटा प्रान्त को मुगल शासन के अन्तर्गत प्रयाग जिला में मिला लिया इनके राज्य की एक मात्र राजधानी बान्धवगढ़ ही रह गई। सन् 1617 ई. में बान्धवगढ से रीवा स्थानान्तरित हो गई।

में विद्यमान है, गोपालपुर, व ठान, सन्नहा आदि ऐसे ही गांव है। शेष विस्मृति के गर्त में चले गये।

ऐतिहासिक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि बान्धवगढ़ पर किसी समय लोधियों का राज्य था। इसी किले पर बहुत समय तक कुरुवंशियों का भी शासन रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुरुवंशी कोई और नहीं, इस क्षेत्र में फैले हुये कृषिकर्मा कुरमी थे। इनकी सत्ता बान्धवगढ़ से अन्तिम बार सन् 1535 ई. के आस पास छूटी थी। बाघेलवंश के अठारहवें शासक वीरसिंह देव (सन् 1500 से 1540) ने कुरुवंशी शासक नारायणदास को पराजित किया था। किन्तु जब पुन: सत्ता प्राप्ति के लिये ये लोग संगठित होने लगे तो वीरसिंह देव ने इनको बान्धवगढ़ से भगा देने में ही अपनी सुरक्षा समझी। अत: इन्हें बलपूर्वक इस क्षेत्र से खदेड़ा गया। अनेक परिवार भागकर दक्षिण-पूर्व की ओर चले गये। कुछ इधर- उधर रम गये। जब बवण्डर शान्त हो गया तब इधर-उधर रमे हुये परिवार बस्तियां बसाकर स्थिर चित्त हो रहने लगे। मानपुर विकासखण्ड में कृषिकर्मा कुर्मियों की अनेक वस्तियां यथा सिगुड़ी, गोवर्दे, कठार, कछौहा, सेमरा, बल्हौड़, सलैया, कोटरी आदि उन्ही के उत्तराधिकारियो की है। बिजौरी अमरपुर आदि गांवों में भी कुछ परिवार थे जो अन्यान्य कारणों से इन गांवो को छोड़कर अन्यत्र चले गये हैं।

बान्धवगढ़ पर अनेक संकट भी आये। यहां एक संकट का उल्लेख कर देना समी चीन है क्योंकि उसका बाघेल राज्य पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव राजनीतिक था। वीरभद्र (1592-1597 ई.) की जब 1597 ई. में मृत्यु हुई तो उनके दोनो पुत्र विक्रमादित्य और दुर्योधन सिंह अल्पवयस्क थे। इनके बाबा यमुनीभानु ने राज्य शासन संभाला। लेकिन स्वार्थपरता एवं अन्दरूनी तीब्र कलह के कारण क्रान्ति खड़ी हो गई। इस स्थिति को सुधारने एवं सामान्य स्थिति स्थापित करने के लिये अकबर ने अपने प्रतिनिधि के रूप में पात्रदास को बान्धवगढ़ का गवर्नर बनाकर भेजा। पात्रदास ने सन् 1596 से 1597 में आठ माह पाँच दिन के घेरे के बाद बान्धवगढ़ पर विजय प्राप्त की। उसने राज्य शासन अपने हाथ में ले लिया। बान्धवगढ़ किले के किले दार यमुनीभानु थे। विक्रमादित्य इस्माइल कुली खां के साथ अकबर की दरवार चले गये। दुर्योधन सिंह अकबर की मशानुसार बान्धवगढ के शासक स्वीकार कर लिये गये। लेकिन सन् 1617 ई. में दुर्योधनसिंह का विवाह भदावर के राजा बदन सिंह की रखैल की पुत्री से होने के कारण वह जातिच्युत कर दिये गये। वह भदावर चले गये। रीवा की गद्दी खाली हो गई।

रीवा के बाघेल सरदानों ने विक्रमादित्य के राजा होने का मुगल दरवार में आग्रहपूर्ण अनुरोध किया, जिससे वह सन् 1617 ई.में ही बान्धवगढ़ के राजा स्वीकार कर लिये गये। उनके पुत्र अमरसिंह ने सन् 1624 ई. में मुगल शासक जहांगीर की दरवार में मुगल दरवार की आधीनता स्वीकार करने के लिये उपस्थित हुये। जहांगीर ने उन्हें 'पंचहजारी मनसबदारी' का पद प्रदान किया। यह रीवा के प्रथम शासक थे जिन्होने मुगलों की मनसबदारी का पद ग्रहण किया था। उनकी सत्ता मुगल दरवार की कृपा पर निर्भर थी। वैसे मुगल शासन का नियंत्रण इस पर मुगल सम्राट अकबर के समय से ही था।

❁ ❁ ❁ ❁

बीरसिंह देव और हुंमायूं मे गहरी मित्रता थी। शेरशाह सूरी हुमायूं का शत्रु था। इसीलिये शेरशाह ने वीरसिंह देव के राज्य पर आक्रमण करके रीवा को जीत लिया था। लेकिन इसके पूर्व सन् 1540-41 में शेरशाह सूरी और हुमायूं का चौसा (बिहार) नामक स्थान पर युद्ध हुआ था जिसमें हुमायूँ बुरी तरह से पराजित होकर भागा था। उसकी बेगम हमीदाबानू (चोली) भी साथ मे जाने के लिये भागी, लेकिन साथ छूट जाने के कारण वह पीछे छूट गई।गंगा पार करते समय हुमायूं डूबते डूबते बचा। जब चोली नाव से गंगा पार कर रही थी, शेरशाह के सिपाहियो ने आ घेरा और नाव को डुबो देना चाहा। वीरभानु उस समय वहीं थे। वह हुमायूँ की मदद के लिये गये थे। जैसे ही उन्हें इस स्थिति की जानकारी हुई, वह अपने सैनिकों के साथ वहां तत्काल पहुंच गये, बेगम की रक्षा की और शेरशाह सूरी के सैनिकों को मार भगाया। बेगम को शरण दी।

वीरभानु बेगम को लेकर मुकुन्दपुर की गढ़ी में आकर रुके। बेगम गर्भवती थी। अस्तु यहीं पर 15 अक्टूबर 1542 ई. को अकबर का जन्म हुआ। फिर बेगम और नवजात शिशु को लेकर बान्धवगढ़ चले आये क्योंकि यहां अधिक सुरक्षा थी, शेरशाह बान्धवगढ आने का साहस नही कर सका।

वीरभानु ने नवजात शिशु अकबर और उसकी (हुमायूँ) बेगम को अपने चार सौ चुने हुये वीर घुड़सवार सिपाहियों के साथ हुमायूँ के पास अमरकोट (राजस्थान)भेज दिया। हुमायूँ उस समय बड़ी कठिनाई में था। उसने कस्तूरी (मुश्क) के छोटे-छोटे टुकड़े अपने साथियों एवं रिश्तेदारों के बीच बांटकर ईश्वर (अल्लाह) से इबादत (प्रार्थना) की थी कि मेरे पुत्र का यश भी इसी तरह फैले।

यही शिशु आगे चलकर चौदह वर्ष की उम्र में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और अकबर महान के नाम से इतिहास में अमर-अमिट स्थान बनाया। संयोग कहे या ईश्वर की महान कृपा, हुमायूँ ने हाथ जोड़कर आकाश की ओर देखते हुये अल्लाह से जो मुराद मांगी थी जो प्रार्थना की थीं, वह अक्षरश: पूरी हुई।

शेरशाह सूरी ने कैमोर के उत्तरी भाग को जिसमें रीवा भी शामिल था, जीतकर कालिञ्जर पर चढ़ाई की, उसे भी जीत लिया। वह वीरसिंह एवं उनके पुत्र वीरभानु को भी अपना शत्रु समझने लगा था हुमायूँ की मित्रता इसका मुख्य कारण थी।

यहां यह उल्लेख कर देना सामयिक है कि रीवा गद्दी पर वीरसिंह देव (1500-1540ई.) तक और उनके पुत्र वीरभानु सन् 1540 से 1555 तक रहे। शेरशाह अफगानों का सरदार सन् 1540 ई.से 1545 ई. तक शासक रहा। उसने अफगानों को संगठित कर अपनी शक्ति बढ़ा ली। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियां भी उसका साथ देती गयीं, उसने हुमायूँ के राज्य के बड़े भूभाग को जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया।

चूँकि हुमायूँ उसका शत्रु था, हुमायूँ की सहायता रीवा नरेश ने की थी, अत: शेरशाह रीवा को भी अपना विरोधी समझ रहा था। उसने 1543 ई.में आक्रमण करके रीवा को जीत लिया था। कैमोर के उत्तरी भाग को जिसमें रीवा आदि अनेक प्रमुख स्थान थे, अपने राज्य में किला लिया। तत्पश्चात् कालिञ्जर पर चढ़ाई की और उसे भी जीत लिया। रीवा में उसका पुत्र जलाल खाँ जिसे सलीमशाह भी कहते हैं, बीहर-बिछिया के संगम पर एक किले की नींव रखी और निर्माण कार्य द्रुतगति से प्रारम्भ किया। लेकिन इसी बीच उसे सूचना मिली कि काजिञ्जर के किले में एक दुर्घटना में शेरशाह आग से बुरी तहर झुलस गया है। जलाल खाँ रीवा से शीघ्र कालिञ्जर के लिये चल पड़ा। लेकिन उसके पहुंचने के पहले ही उसकी मृत्यु हो गई थी। उसके जाने के बाद वीरभान ने पुन: रीवा पर आधिपत्य जमा लिया।

जब सन् 1617 ई. में विक्रमादित्य दिल्ली दरवार से बान्धवगढ़ आये तो बान्धवगढ़ में उनका मन नहीं लगा। वह उत्तर की ओर कुछ सैनिको के साथ शिकार खेलते हुये रीवा तक पहुंच गये। उन्होने बीहर-बिछिया मे एक किले की पड़ी हुई नीव देखी। उन्हें यह स्थान बहुत पसन्द आया। उन्होने इस अपूर्ण -

किले को पूरा करवाया और सन् 1618 ई.में इसे राजधानी का दर्जा दे दिया। यह स्थान रीवा राज्य के मध्य मे होने से शासन-संचालन की दृष्टि से भी बहुत उपयुक्त था। उस समय रीवा एक नगण्य सी मामूली बस्ती थी। राजधानी बन जाने से इस स्थान का गौरव बढ़ा। अनेक भवनों का निर्माण हुआ और राज्य के अन्य स्थानो से लोग आ आकर बसने लगे। कालान्तर में रीवा ने एक अच्छे नगर का रूप ले लिया। लेकिन बान्धवगढ़ बघेल शासको के लिये महत्वपूर्ण बना रहा। बान्धवगढ़ के शासक होने के कारण वे आदर सूचक शब्द 'बान्धवेश' नरेश से संवोधित किये जाने लगे।

❁ ❁ ❁ ❁

वीरसिंह सन्त कबीर के परम शिष्य थे। सन्त कबीर अपने पर्यटन में बान्धवगढ़ आये, और उन्हें दीक्षित किये। कबीर साहब ने उन्हें स्वयं धर्मोपदेश दिया था और सत्संग का परम लाभ भी दिया था। राजा ने उनके सिद्धान्तों और उपदेशों को अपनाया। उन्होने कबीर साहब की शिक्षाओं के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करने का प्रयास किया। उन्होंने सन्त कबीर के नाम पर एक चबूतरा का निर्माण भी कराया। बान्धवगढ़ में ' कबीर चौरा' आज भी विद्यमान है।

कहा जाता है कि वीरसिंह कबीर साहब के प्रमुख शिष्यों में थे। उन्ही के समय से आज तक बाघेलों में परस्पर अभिवादन में 'साहब सलाम' शब्द का प्रयोग किया जाता है जो कबीरपंथ के प्रभाव का द्योतक है, कबीर पंथ के अनुयायी परस्पर अभिवादन में 'साहब वन्दगी' शब्द का प्रयोग करते हैं, 'साहब' का अर्थ स्वामी, ईश्वर होता है।

बान्धवगढ़ के अविस्मरणीय व्यक्तित्व

बान्धवगढ़ में कबीर साहब का आगमन एक से अधिक बार हुआ। यहां महाराजा वीर सिंह तो उनके शिष्य बने ही, लेकिन धनी धर्मदास भी उनके सच्चे आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के रूप में प्रसिद्ध हुये,

हम यहां कबीर साहब के सम्बन्ध में थोड़ा बता दें तत्पश्चात् धनी धर्मदास जी के सम्बन्ध में उल्लेख करें क्योंकि कबीर साहब उनके (धनी धर्मदास जी) गुरू हैं।

सद्गुरु कबीर

श्री सद्गुरु कबीर
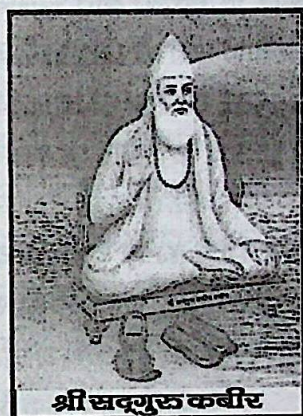
आध्यात्मिक जगत के सम्राट सन्त शिरोमणि कबीर साहब का अवतरण सम्बत् 1455 तद्नुसार सन् 1398 ई. में हुआ। इनके माता-पिता कौन थे, यह नहीं बताया जा सकता। वह नीरू -नीमा जुलाहा दम्पत्ति को लहरतारा तालाब के समीप वैसे ही मिले थे जेसे राजा जनक को हल चलाते समय खेत में शिशु रूप में सीता जी मिली थी। दोनो ही विभूतियां अपने आचरण एवं कर्मों के कारण हिन्दू समाज में सम्माननीय एवं वन्दनीय हैं लेकिन दोनो के जीवन में चमत्कारपूर्ण कथानक एवं घटनायें जोड़कर दोनो को अलौकिक ढंग से उत्पन्न होना बताया गया है। यद्यपि किसी की ऐसी उत्पत्ति वैज्ञानिक सत्य से साम्य नही खाती हे। वैज्ञानिक सत्य यह है कि प्रत्येक शिशु का जन्म माता की कोख से ही होता है, बिना माता-पिता के किसी शिशु का अवतरण प्रकृति के शाश्वत नियम के प्रतिकूल है।

कबीर साहब का पालन-पोषण नीरू-नीमा दम्पत्ति ने बड़े लाड़-प्यार से किया। कबीर साहब को किसी संस्था या पाठशाला में नियमित रूप से पढ़ने-लिखने का अवसर नहीं मिला। उन्होने स्वप्रयास से लिखना- पढ़ना सीख लिया।

कबीर साहब में विराट् प्रतिभा थी। उन्होंने तत्कालीन समाज का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त कर उसे सद्मार्ग पर चलने की राह दिखाई।

कबीर साहब के समय में अनेक सामाजिक बुराइयाँ,कुरीतियां, अन्धविश्वास, ऊंचनीच, छुआछूत, जातीयदम्भ, अहंकार शोषण ,अन्याय भेदभाव,घृणा,द्वेष व्याप्त था। कर्मकाण्ड, पाखण्ड, धार्मिक-असहिष्णुता चरम सीमा पर था। हिन्दू- मुंसलमानो में सामाजिक समरसता का अभाव था। दोनो ही समुदाय अन्धविश्वास, धार्मिक पाखण्ड, बाह्यडम्बर को धर्म समझकर उन्हीं में चिपके हुये थे। ऐसे वातावरण में कबीर साहब का जन्म एक दैवी प्रकाश के रूप में हुआ जो अज्ञान,अन्धविश्वास की घनी छाया को चीरकर लोगो को सत्पथ का मार्गदर्शन दिया और लोगो को सही राह बतायी।

वह मानवता के संरक्षक और पोषक थे। इसीलिये उन्होने बिना लाग लपेट के सच्ची बात खुलकर कही जो मानव-समाज के लिये हितकर और कल्याणकारी थीं। वह समाज के सच्चे पथ-प्रदर्शक थे, गुरु थे, वह किसी वर्ग, समुदाय, सम्प्रदाय की त्रुटि या दोष देखकर उसे चेताने के लिये फटकार भी लगाने में संकोच नहीं करते थे, इसलिये कि उनका उनसे अगाध प्रेम था।

कबीर साहब ने शास्त्रों-किताबों में लिखी बात का नही ,अपितु आंखों देखी सांच का ही वर्णन किया है। उन्होने पहले सत्य को देखा, जाना, परखा, अनुभव किया, उसके अनुसार जिया फिर कहा। पहले सत्य को आचरण में ढाला, फिर दूसरों को आचरण में ढालने को कहा।

कबीर साहब सत्य के उपासक और अनुयायी थे। वह असत्य, पाखण्ड, दम्भ, अहंकार के विरोधी थे। उसके कटु आलोचक थे। उन्होने मुल्ला और ब्राह्मण-पुरोहितों दोनो के मिथ्या दम्भ पर घृणा की। वह जाति, वर्ण जैसी झूठी बातों से कभी प्रभावित नहीं हुये। वह अपने को जुलाहा कहने में कभी किसी प्रकार की हीनता नहीं महसूस की, कोई जाति हीन नहीं होती।

हमारी प्राचीन आर्य- परम्परा कर्मों में निष्ठा रखती थी। हमारे वैदिक ऋषि अधिकतर चरवाहे थे। वे कपड़े भी बुनते थे, वेदों के मंत्रो की रचना भी करते थे, दवाइयाँ बनाते थे। महाराज श्री कृष्ण जीवन के प्रारम्भ में गोपालक तथा चरवाहे थे। उनके बड़े भाई बलराम हलधर तथा हलवाहक थे। ऐतरेय महीदास, वेद व्यास, सूत जी महाराज-सब श्रमिक परिवार में पैदा हुये थे। कबीर साहब उसी परम्परा की कड़ी थे। वह कर्मकार थे, बुनकर थे। वह कर्मकारों के पक्षधर थे। समाज की रीढ़ आखिरकार यही लोग तो है। उन्हें यह देखकर दु:ख हुआ कि इन कर्मकारों को अछूत,नीच,हेय मान लिया गया। यह उनके साथ घोर अन्याय था। अमानवीयता थी कि जो हमारे जीवन को सुखद, सरल;सुविधा सम्पन्न बनाने में लगे हैं हम उन्ही को निम्न मानते हैं , यह कितनी लज्जास्पद बात है। कबीर साहब ने उन्हें सम्मानजनक दृष्टि से देखा और अन्य श्रेष्ठ कहे जाने वाले लोगों के समकक्ष रखा।

कबीर साहब पर्यटक सन्त थे। वह देशाटन करते रहे और लोगों को उपदेश देते रहे। वह देश के अनेक भागों में गये। वह तरुणावस्था से ही देश के विभिन्न भागों में भ्रमण करने लगे थे। बंगाल, पंजाब, राजस्थान, गुजरात-

मध्यप्रदेश द्वारका, महाराष्ट्र, दक्षिणी भारत जगन्नाथ आदि स्थानों के भ्रमण के

विषय में उल्लेख मिलता है। गुजरात में आज लगभग सौ ऐसे चिन्ह हैं जो कबीर साहब के गुजरात भ्रमण की गवाही देते हैं।

कबीर साहब संसार की किसी पुस्तक को चाहे वेद हों, कुरान हो, या बाइबिल हो या अन्य कोई धार्मिक पुस्तक हो, मनुष्य की रचना मानते हैं। उन्होंने किसी बात को विश्व के शाश्वत नियमो तथा प्रकृति की कारण-कार्य व्यवस्था की कसौटी से स्वीकार करने को कहते हैं। वह किसी प्रकार के चमत्कार को धोखा समझते हैं व भोले-भाले लोगों को ठगने का ढंग मानते हैं। वे किसी शास्त्र में लिखी होने से किसी बात को प्रमाण नही मानते यदि वह शाश्वत नियमों के विरुद्ध है। वह किसी पुस्तक को ईश्वरीय भी नहीं मानते।

उनका उपदेश हे कि मनुष्य सदाचारी बने। उसे चाहिये कि वह चोरी, हिंसा,हत्या, व्यभिचार, असत्य-भाषण, पर निन्दा, ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार, दम्भ, छलकपट, अभक्ष्य, भक्षण तथा हर प्रकार के नशा का परित्याग करे। वह शीलवान आचरणवान, ईमानदार, स्वाबलम्बी बने।

उनकी समझाइश है कि जीवन अल्प है। समय द्रुतगति से भागा जा रहा है, इसका व्यर्थ की बातचीत तथा बुरे कार्यों में न लगाकर आत्मशोधन तथा आत्मचिन्तन में लगाये। पूर्ण चित्त शुद्धि से ही भीतर चिरन्तन सुख-शान्ति का साम्राज्य स्थापित होता है।

कबीर साहब ने समाज में समता, एकता स्थापित करने का आन्दोलन चलाकर मानव अस्मिता एवं मानव गरिमा की रक्षा की। वह सही अर्थों में धर्म-निरपेक्ष,निष्पक्ष,आदर्श सन्त थे। सन्त नाभादास जी ने सत्य ही कहा है- "पक्षपात नहिं वचन सबहि के हित की भाखी' यानी उन्होने बिना किसी का पक्ष लिये सबके हित की बात कही है।

कबीर साहब युगान्तरकारी सन्त हैं। वह समतावादी और मानवतावादी धर्म के संस्थापक हैं। सभी प्रकार की जड़मान्यताओं, पाखण्ड, अहंकार, चमत्कार से हटकर शाश्वत सत्य ग्रहण करने का उन्होंने आग्रह किया, संदेश-उपदेश दिया,आज भौतिक प्रगति के बाद भी जीवन में बड़ी अशान्ति है, तनाव है, पीड़ा है। "वैभव दूना, अन्तर सूना" अन्तर में दैवी गुणों के अभाव के कारण जीवन दु:खमय है, दु:खी है। जब तक व्यक्ति का अन्तर्मन पवित्र नहीं होगा, उसके मन

में सद्विचार, सद्भावनायें नही होगी, तब तक वह भौतिक सम्पदा के बीच में भी वैसे ही छटपटाता रहेगा जेसे कि दूध से भरे तालाब मे मछली असहज होकर छटपटाती रहती है।

कबीर साहब उच्चकोटि के विरक्त सन्त थे। वह आजीवन विरक्त रहे। वह बाल ब्रह्मचारी रहे। वह आध्यात्मिक ज्ञान के शिखर पुरुष थे। वह सारे मत-मतान्तरों और सम्प्रदाय से ऊपर थे। वह सही अर्थों में उच्चकोटि के मानव थे। उनकी दृष्टि में विश्व की सारी मानव जाति एक है।

कबीर साहब मौलिक चिन्तक थे। उन्होने अपनी बातें कई विधाओ में कही है ; उनमें रमैनी, शब्द साखी प्रमुख है। उनके प्रामाणिक ग्रन्थ "बीजक" में इन विधाओ का समावेश है। उन्होने अपनी धारदार बाते रूपक, प्रतीक, अन्योक्ति कथन, उलटवासी शैली में कही हैं। कबीर साहब जैसे स्पष्ट वक्ता और साधक कोई सन्त नही हुआ है।

सद्गुरु कबीर एक सौ बीस वर्ष की आयु भोगकर विक्रम सम्बत् 1575 में निर्वाणपद प्राप्तकर परमधाम चले गये।

धनी धर्मदास

धनी धर्मदास जी साहेब

धनी धर्मदास एक महान साधक, तपस्वी सन्त थे, इनका जन्म बान्धवगढ (जिला- उमरिया, मध्यप्रदेश) में सम्बत् 1452 की कार्तिक पूर्णिमा दिन गुरुवार को हुआ था। आपके पिता का नाम मनमहेश था। वह कसौधन वैश्य थे।
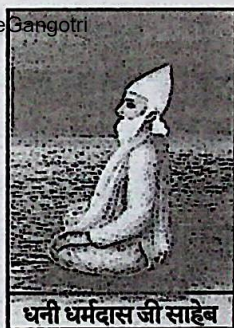
मनमहेश और इनके पूर्वज बड़े व्यापारी थे, इनके व्यापारिक सम्बन्ध मथुरा, काशी, कौशाम्बी उज्जैन आदि प्रमुख नगरों से थे। ये नगर उस समय व्यापरिक केन्द्र के रूप में काफी उन्नत थे। इनके पूर्वजों ने अपने व्यवसाय से अतुल सम्पत्ति संग्रह कर ली थी। जिस समय धर्मदास जी का जन्म हुआ, उस समय इनके पिता मनमहेश के पास करोड़ों की सम्पत्ति थी।

अट्ठाईस वर्ष की आयु में अर्थात् सम्बत् 1480 में इनकी शादी पथरहटा ग्राम (वर्तमान शहडोल जिला, अब वाणसागर के कारण डूब में आ गया) के एक धर्मनिष्ठ वैश्य व्यापारी की कन्या के साथ हुआ जो बचपन से ही बहुत धर्मनिष्ठ और धर्मपरायण थी, नाम सुलक्षणावती था। जिन्हें बाद में " आमिन माता" के नाम से पुकारा जाता रहा , वह इसी नये नाम से प्रसिद्ध रही।

सम्बत् 1482 में उनके प्रथम पुत्र नारायणदास का जन्म हुआ। सम्बत् 1519 में तीर्थ यात्रा के समय आपकी मुलाकात मथुरा (उत्तर प्रदेश) में सद्‌गुरु कबीर साहब से हुई। कबीर साहब से वह बहुत प्रभावित हुये। अत: उन्होंने बान्धवगढ शीघ्र पधारने का सद्‌गुरु से अनुरोध किया, जब सम्बत् 1520 में सद्‌गुरु कबीर साहब का बान्धवगढ में आगमन हुआ तो विशाल जनसमूह के सामने आपने अपनी पत्नी आमिन माता के साथ सद्‌गुरु से दीक्षा ली। बान्धवगढ में निरन्तर सत्संग होने लगा।

धर्मदास जी ने अपनी समस्त प्रकार की शंकाओं का समाधान सद्‌गुरु कबीर साहब से प्राप्त किया। धर्मदास की वंशगद्दी के ग्रन्थों में धर्मदास-कबीर के संवाद के रूप में ये सारी बाते विद्यमान है। सद्‌गुरु कबीर साहब ने कहा-

"धर्मदास तुम बड़े विवेकी, तुम्हरे घट बुद्धि बड़ देखी।
खोजत-खोजत तुमको पाया,सकल भेद तोहि खोल बताया॥"

कहते हैं कि कबीर साहब ने धर्मदास जी को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे एक पुत्र होंगे जो महान सन्त होंगे। वह संसार को सद्मार्ग दिखायेंगे और मानव समाज का सुख शान्ति प्रदान करेगे। उस पुत्र का जन्म धनी धर्मदास के दूसरे पुत्र के रूप में सम्बत् 1538 अगहन पूर्णिमा दिन रविवार को हुआ, नाम रखा गया चुरामणि किन्तु वाद में पंथ श्री "मुक्तामणि" नाम रखा गया। यही बालक आगे चलकर 'मुक्तामणि नाम साहब से बहुत प्रसिद्ध हुये। इन्ही से वंश बयालीस की गुरु-प्रणाली चली। वंश परम्परा में पिता ही बालक का गुरु होता है अथवा उसी कुल के अन्य किसी सुयोग्य व्यक्ति से दीक्षा ली जाती है। इस प्रकार की गुरु-शिष्य परम्परा विश्व में अन्यत्र सम्भवत: कहीं नही है।

धर्मदास सद्गुरु कबीर साहब के प्रधान शिष्य थे। उनके एक अन्य प्रमुख शिष्य तत्कालीन बान्धव नरेश भी थे जिसका उल्लेख पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है।

धर्मदास को सद्गुरु कबीर साहब के उपदेश एवं सत्संग से परम बैराग्य हो गया। सद्गुरु की रहनी देखकर वह विरक्त हो गये। सारी मानव जाति उन्हें अपने परिजन जैसे दिखने लगी। दीन-दुखियों की पीड़ा उनकी अपनी पीड़ा हो गयी, धन-सम्पत्ति तथा संसार की सारी भोग-वस्तुयें उन्हें स्वप्न में दिख जाने वाली वस्तु नज़र आने लगी जो प्रात: जगते ही नि:सार हो जाती हैं। अत: उन्होने अपनी करोड़ों की सम्पत्ति दीन-दुखियों की सेवा में जन-कल्याण के लिये दे दी और पर्यटन में निकल गये। सम्बत् 1569 के फागुन माह की पूर्णिमा दिन शुक्रवार के तीसरे पहर जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) में धर्मदास जी ने अन्तिम समाधि ले ली। इस अवसर पर उनके पुत्र मुक्तामणि नाम साहब, आमिन माता तथा तत्कालीन बान्धवेश राजावीरसिंह तथा सद्गुरु कबीर साहब उपस्थित थे।

धनी धर्मदास साहब बान्धवगढ़ की विभूति थे। अपने पूर्वजों की सारी एकत्रित सम्पदा दीन-दुखियों में उसी तरह बाट दी जैसे मेवाड़ के भामाशाह ने अपनी अतुल सम्पत्ति , जो उनके घर में पीढ़ियों से संग्रह हुई थी, देश की रक्षा हेतु महाराणा प्रताप सिंह को दे दी थी।

धनी धर्मदास के अथक परिश्रम से ही कबीर साहब की वाणी बीजक, साखी, शब्द आदि के रूप में आज देखने को मिलती है। कबीर साहब के सृजित साहित्य को धनी धर्मदास ने अक्षुण्य बनाया।

सन्त सेन महाराज

सन्तसेन महाराज

आपका जन्म बान्धवगढ़ में सम्बत् 1357 वैसाख कृष्ण द्वादशी को हुआ। आपके पिता का नाम उग्रसेन नापित और मां का नाम यशोदा था। आप अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान थे।

आप लड़कपन से अपने पिता के व्यवसाय "क्षौर कार्य" में लग गये। आप अपने पैतृक व्यवसाय में उम्र बढ़ने के साथ-साथ कुशल एवं निष्णात् होते गये। आपकी सेवा एवं कार्य से तत्कालीन बान्धव-नरेश बहुत प्रसन्न रहते थे। आपकी सेवा, क्षौर कार्य एवं मालिश भी उत्तम कोटि की रहती थी।

आप अपने व्यवसाय में बहुत कुशल थे ; पारंगत थे। आप उच्चकोटि के वैष्णव भक्त थे। आपके परम आराध्य भगवान श्रीराम थे। आप अपनी भक्ति एवं सामाजिक सेवा के कारण उस समय बान्धवगढ़ में सर्वाधिक चर्चित व्यक्ति थे।

आप अत्यन्त विनम्र,शिष्ट,मातृ-पितृ भक्त तथा लोगो की सेवा में रुचि रखने वाले सन्त थे। अन्यान्य कारणों से बान्धव नरेश आपसे बहुत प्रभावित थे, आपके गुणों से वह अभिभूत थे। उनकी दृष्टि में आप असाधारण व्यक्ति थे।

आपके गुणों की दिव्यता से वह आपके प्रति पूज्यभाव रखने लगे। उनके जीवन में घटी एक असाधारण घटना ने उनके विचारों में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। वह स्वामी सेवक के रिश्तो से ऊपर उठ गये।

बान्धव नरेश आपको अपना गुरु समझने लगे। आपको अपना गुरु मानकर आपकी पूजा-अभ्यर्थना की और क्षौर-कर्म से निवृत्त किया। बान्धव नरेश आपके पास सत्संग तथा ज्ञानचर्चा सुनने के लिये आने लगे।

जब व्यक्ति की अन्तर्दृष्टि खुल जाती है तब वह सांसारिक रिश्तों,अहं, अहंकार एवं समस्त प्रकार की संकीर्णताओं से ऊपर उठ जाता है और सभी प्राणियों में ईश्वर की झलक देखने लगता है। वह अनेक मानवीय संकीर्णताओं, परम्पराओ और स्थापित सामाजिक व्यवहारों से बहुत ऊपर उठ जाता है। उसकी दृष्टि में कोई छोटा-बड़ा, ऊँचा-नीचा नहीं रह जाता है। "जित देखूँ तितलाल" यानी जिस तरफ या जिसे भी वह देखता है, सर्वत्र परमपिता प्रभु की झलक ही उसे दिखाई पड़ती है, उसी प्रभु का विम्ब सर्वत्र भासित होता है जिसकी भक्ति तथा अनुराग में वह डूबा रहता है।

भक्त सेन महाराज के आचरण और वाणी से नरेश की आंखें खुल गई थीं।

वह रूपान्तरित हो गये थे। इसीलिये महाराजा होने का अभिमान तथा अहंकार जाता रहा और सेन को गुरु मानकर उनका पूजन-अर्चन किया और लोगों को एक नया मार्ग दिखा दिया।

श्रीमद् गोस्वामी श्री नाभा जी ने मूल भक्त माल में लिखा है:-

विदित बात जग जानियै, हरि गये सहायक सेन के।
प्रभू दास के काज रूप नापित को कीनौ
छिप्र छुड़हरी गही पानि दर्पन तँह लीनौ।
तादृश ह्वै तिहि काल भूप के तेल लगायौ।
उलटि राव भयो शिष्य प्रगट परचौ जब पायौ।
स्याम रहत सनमुख सदा ज्यों बच्छा हित धेन के।
विदित बात जग जानियै, हरि गये सहायक सेन के॥ [1]

भक्तमाल, छप्पय 63

सौ वर्ष की आयु में आपने विक्रम सम्बत् 1457 माघकृष्ण द्वादशी को भगवत्धाम गमन किया।

सन्त सेनाचार्य जी का प्रथम बार जयन्ती महोत्सव बड़े ही धूमधाम एवं विविध कार्यक्रमों के साथ दिनांक 14.04.07 से 18.04.07 तक बान्धवगढ (ताला) में मनाया गया। इस महोत्सव में वृन्दावन , हरिद्वार,अयोध्या,काशी, चित्रकूट आदि तीर्थ स्थानो से सन्त पधारे थे। इनके आवासीय एवं भोजन व्यवस्था में श्री रामसकल द्विवेदी एवं उनके पुत्रों ने तन-मन-धन से अत्यन्त प्रशंसनीय सहयोग दिया था।

---

1. उक्त छप्पय का भावार्थ इस प्रकार है- यह बाद सारा संसार जानता है कि प्रभु सन्त सेन की सहायता के लिये गये। वह भक्त के कार्य हेतु नापित का रूप धारण कर तुरन्त हाथ मे छुड़हरी और दर्पण लेकर सन्त सेन का रूप धारण कर राजा की सेवा की, जब बाद में राजा को ज्ञात हुआ कि सत्य क्या है तब राजा स्वयं सन्त सेन के शिष्य हो गये। जैसे गाय अपने बच्चे का सदैव ध्यान रखती है वैसे ही प्रभु अपने भक्त का सदा ध्यान रखते हैं। यह बात जगजाहिर है कि प्रभु सन्त सेन की सहायता के लिये गये।

BANDHAVGARH TIGER RESERVE

Tourist Route

N

To Amarpatan

TALA

A

D

B Tourism Zone
(67 Sq. Km.)

C

E

Fort

To Umaria

Route A - Main gate - Dhanyawad - Jurmani tiraha
Route B - Maingate - Chakradhara - Barigufa
Route C - Maingate - Jamuniya - Dhobihakhol
Route D - Maingate - Jamuniya - Baruamala
Route E - Maingate - Chakradhara - Badhaini tiraha
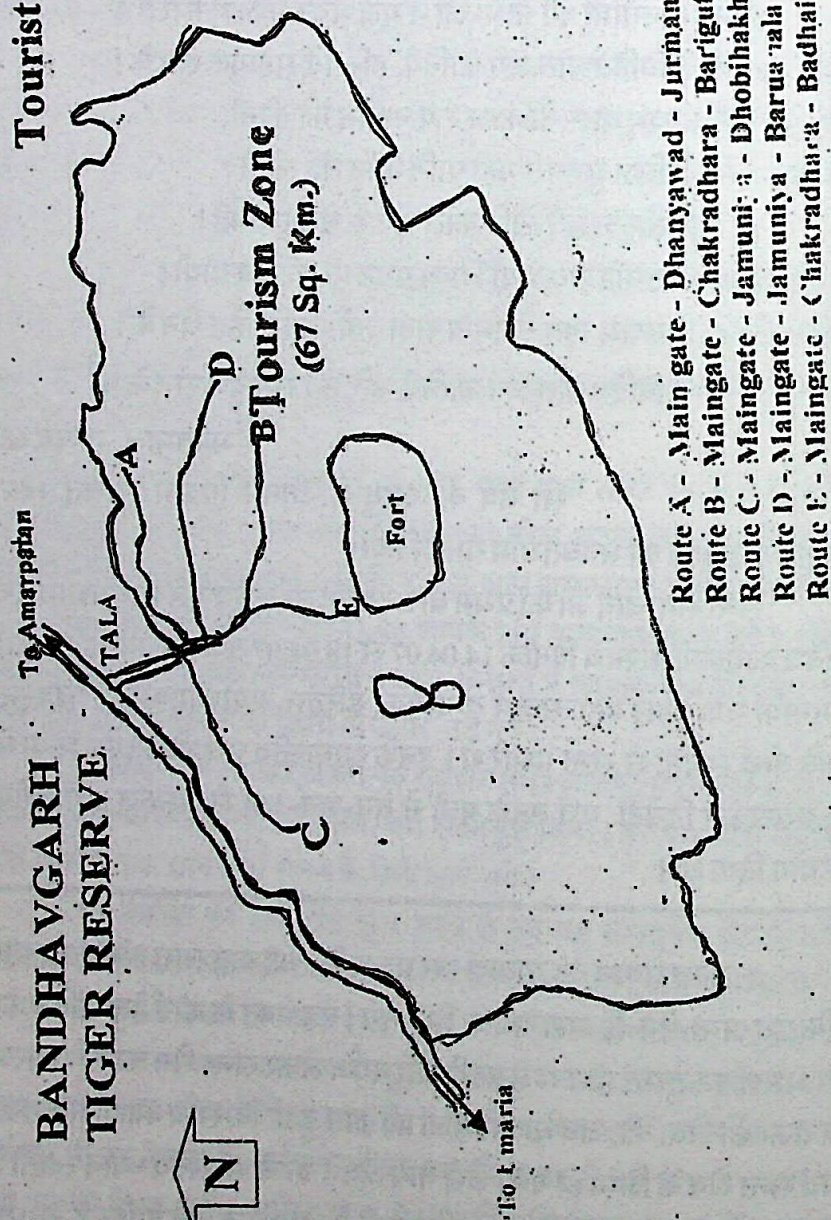
मुगल सम्राट अकबर महान

यहां मुगल सम्राट अकबर के सम्बन्ध में कुछ उल्लेखनीय तथ्यों को बताना भी आवश्यक है।

हुमायूँ और अफगान सरदार शेर खाँ, जो इतिहास में शेरशाह सूरी के नाम से प्रसिद्ध हे, के बीच तीव्र शत्रुता थी। वह मुगलों को उन्मूलित करके अफगानों की पुर्नस्थापना चाहता था। इन दोनो के बीच प्रथम संघर्ष चुनार को लेकर हुआ। शेर खाँ ने अपना अधिकार कूटनीति से चुनार पर जमा लिया। शेर खॉ अपनी शक्ति में वृद्धि करता रहा और कुछ ही दिनो में उसने; जब हुमायूँ बहादुरशाह से उलझा हुआ था, विहार और बंगाल पर भी अधिकार कर लिया, फिर बनारस्स पर आक्रमण कर बड़ी संख्या में मुगलो की हत्या कर दी। फिर बहराइच और जौनपुर से मुगलों को मार भगाया और अपना अधिकार कर लिया। इन सारी घटनाओ को सुनकर हुमायॅू बहुत चिन्तित हुआ। उसने सेना एकत्रित करके शेरखाँ को दवाने के लिये चौसा की ओर बढ़ा, चौसा के मैदान में दोनो के बीच युद्ध हुआ। हुमायॅू बुरी तरह से पराजित हो कर भागा। उसकी पत्नी हमीदाबानू जिसे चोली भी कहा जाता है, साथ में थी, वह भी भागी। हुमायॅू गंगा में डूबते-2 बचा। उसका घोड़ा वह गया। उसे एक भिश्ती ने बचाया। अपनी मशक के सहारे उसने नदी पार कराया। हुमायूं भगकर राजस्थान की ओर चला गया। उसकी पत्नी हमीदा बानू नाव से नदी पार कर रही थी। तभी शेरशाह सूरी के सैनिकों ने उसे पकड़ने के लिये तेजी सेआगे बढ़े। बाघेल राजा वीरभानु भी हुमायूं की मदद के लिये गये हुये थे। अत: उन्होने अपने सैनिको की मदद से शेरशाह के सैनिकों को मार भगाया और चोली को मुकुन्दपुर गढ़ी में सुरक्षित ले आये। चूंकि गोली गर्भवती थी; अत: कुछ ही दिनों मे उसने 15 अक्टूबर 1542 को एक बच्चे को जन्म दिया। जब चोली कुछ स्वस्थ हो गई, यात्रा करने की स्थिति में हो गयी तो बाघेल राजा वीरभानु ने अपने चुने हुये वीर घुड़सवार सैनिको की अमिरक्षा में चोली को हुमायूं के पास भिजवा दिया। उस समय हुमायू अमरकोट में था। पुत्र और पत्नी को सकुशल पाकर वह बहुत खुश हुआ। उसने आकाश की ओर देखते हुये हाथ जोड़कर अल्लाह से शुक्रगुजार किया और मुश्क के छोटे छोटे टुकड़ें वहां उपस्थित लोगो के मध्य बांट कर अल्लाह से इबादत की कि उसके पुत्र के अच्छे कारनामो से उसकी यश-सुगन्धि भी ऐसे ही फैले।

यही बालक आगे चलकर भारतीय इतिहास में सम्राट अकबर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

संगीत सम्राट तानसेन
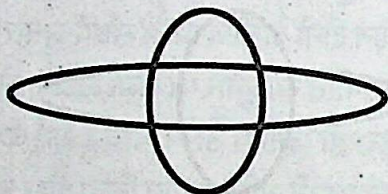
तानसेन का जन्म एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था, इनके पिता का नाम मकरन्द पाण्डे था जिन्हें लोग 'मकरन्द', भी कहते थे। इनका जन्म वर्तमान जिला ग्वालियर अन्तर्गत बेहट गाँव में हुआ था जो ग्वालियर से 56 किलोमीटर दूर झिलमिल नदी के किनारे स्थित है। इनके बचपन का नाम 'तनसुख' था, इनके अन्य दो नाम 'रामतनु' तथा 'त्रिलोचन' थे। गांवो मे आज भी लोगो के दो-दो तीन-तीन नाम्र होते है। 'तानसेन' उनकी उपाधि थी। यह उपाधि उन्हें राजा रामचन्द्र ने दी थी।

तानसेन को बालपन से संगीत के प्रति तीव्र आकर्षण था। अत: संगीत शिक्षण के लिये वह तत्कालीन संगीताचार्य स्वामी हरिदास के पास वृन्दावन गये उनके शिष्यत्व में उन्होने संगीत की शिक्षा ली।

राजा रामचन्द्र संगीत प्रेमी है ; यह सुनकर तानसेन बान्धवगढ़ आये। राजा रामचन्द्र ने उनका बड़ा सम्मान किया। अत: सम्मान पूर्ण वातावरण में उन्होने अपनी तरुणाई का एक भाग बान्धवगढ़ में बिताया। संगीत साधक के रूप में इन्होने कई रागों और स्वरों का आविष्कार किया। इनकी ख्याति सम्राट अकबर तक पहुंची। सम्राट ने राजा के पास तानसेन को दिल्ली भेजने का सन्देश भेजा। सन्देशा पाकर राजा रामचन्द्र बहुत विह्वल हुये। उन्हें रोक भी नहीं सकते थे। अत: आहत हृदय से, अश्रुपूरित नयनों से उन्हें ससम्मान विदा किया। यह घटना लगभग सन् 1584-85 की है।

राजा रामचन्द्र तानसेन के प्रति बहुत कृतज्ञभाव रखते थे। तानसेन के दिल्ली दरवार चले जाने के बाद वह बहुत दु:खी रहने लगे। दिल्ली दरवार पहुंच जाने के बाद तानसेन का परिचय और यश बहुत फैला। उन्हें बड़ी प्रसिद्धि मिली। अब वह सम्राट अकबर की दरवार के रत्न बन गये।उसकी दरवार में बीरबल, टोडरमल, अबुल फजल, अमीर खुसरो जैसे अनेक नर-रत्न थे। कुछ विवशताओं और कारणों से उन्होने धर्मान्तरण कर लिया।

अकबर कला साहित्य का आश्रयदाता था। तानसेन ने अपना सारा शेष जीवन सम्राट अकबर का प्रिय भाजन होकर ही बिताया।

संगीत सम्राट तानसेन के नाम पर मध्य प्रदेश शासन ने 'तानसेन सम्मान पुरस्कार' सुप्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतज्ञ को देने का निर्णय लिया है। इस -

सम्मान के तहत दो लाख रुपये की राशि, शाल श्री फल एवं प्रशस्ति पट्टिका प्रदान की जाती है। वर्ष 2007-08 का प्रतिष्ठित राष्ट्रीय तानसेन सम्मान सुप्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतज्ञ एवं गायक पंडित गोस्वामी गोकुलोत्सव महाराज को प्रदान किया गया। यह समारोह ग्वालियर में दिसम्बर में आयोजित किया जाता है।

तानसेन की स्मृति में 'तानसेन संगीत गुरुकुल विद्यापीठ बेहट' तथा 'साधना संगीत कला केन्द्र ग्वालियर' संचालित है।

'बान्धवगढ़' को तानसेन की साधना स्थली होने का गौरव प्राप्त है। उनके जीवन का प्रारम्भिक काल संगीत साधक के रूप में राजा रामचन्द्र की दरवार में बीता। उनकी यश-सुगन्धि बानधवगढ़ से ही दिल्ली पहुंची थी। वह अतुलनीय संगीतज्ञ थे।

हरा-भरा जंगल
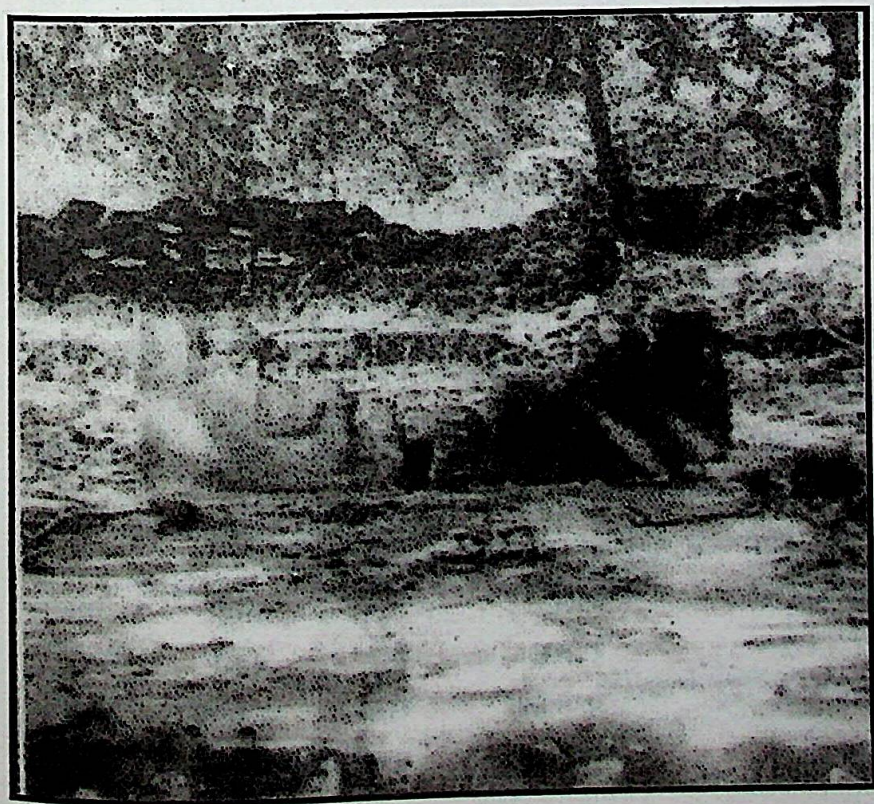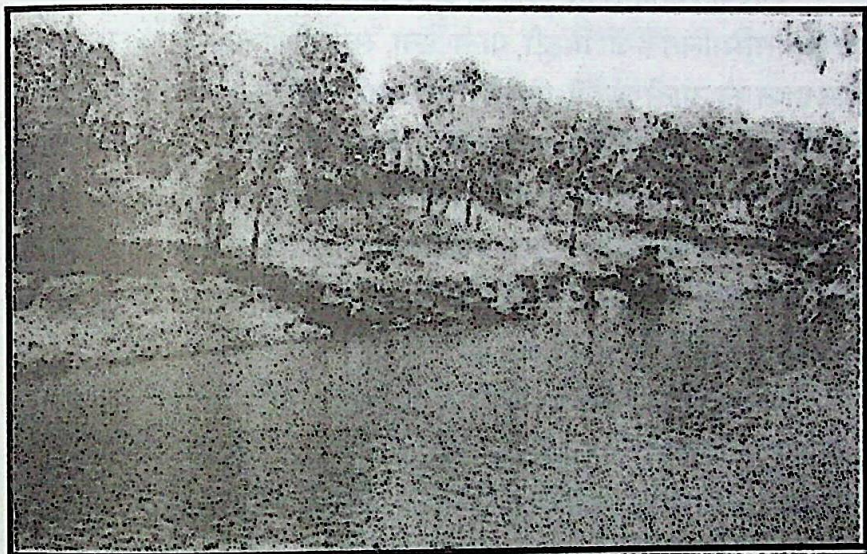
बान्धवगढ़ की वनस्पति

वनस्पति के अन्तर्गत पृथ्वी पर उगने वाली समस्त प्रकार की घासें, पौधे तथा वृक्ष सम्मिलित हैं जो मिट्टी, पानी ,हवा, सूर्य की किरणों आदि से अपना जीवन प्राप्त कर उगती, बढ़ती, पोषित तथा पल्लवित होती है। वनस्पति धरा का श्रृंगार है। प्रकृति का अनमोल आभूषण है। मनुष्य के लिये ईश्वर (प्रकृति) का वरदान है। वनस्पति पर ही सारा प्राणी जगत निर्भर है। वह वनस्पति से ही अपना जीवन पाता है। उसी के बल पर उसका जीवन स्थिर रहता है और जीवन समाप्ति के बाद वह प्रकृति के उन मूल तत्वों में विलीन हो जाता है जिनसे प्रकृति पुन: नया जीवन गढ़ती है और वनस्पति उगती है।

बान्धवगढ़ में अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है, उनके गुण-अवगुणों के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी अब तक नहीं हो पायी है। यहां कई प्रकार की घासें उगती हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकार के वन्य प्राणियों के लिये भोजन का काम करती है। कुछ घासें समतल मैदान में उगती है जो कम ऊचाई की और नरम होती है। इसे हिरन,नीलगाय, भैंस, गाय, बकरी आदि पशु बड़े चाव से खाते है, चरते हैं। नदी-नालों के किनारे बड़ी ऊचाई वाली घासें ,मूंज,कांस आदि उगती है जो गौर, हाथी आदि के भोजन के काम में आती है। दोनों प्रकार की घांसें बान्धवगढ़ क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में उगती है। बड़ी मोटी और कड़े डंठल वाली घास नदी, नालों, तालाबो के किनारे बड़ी मात्रा में उगती है।

यहां अनेक प्रकार के पौधे और ऊँचे वृक्ष हैं। कहीं -कहीं पौधे और वृक्ष बहुत धने हैं। झाड़ियां कहीं-कहीं इतनी घनी है कि सूर्य की किरणे भी भूमि को नहीं छू पाती है।

यहां पाये जाने वाले वृक्षों में साल (सरई) सबसे ऊंचे है ; कोई कोई वृक्ष आकाश से बाते करते प्रतीत होते हैं, बांस भी बहुतायत में हैं।

सामान्यत: यहां निम्न प्रकार के वृक्ष पाये जाते है :-

साल या सरई	बांस	जामुन	करही	बांसा
खैर	रेऊँसा	रोरी	आम	तेन्दू
गुरजा	कपोकया	सेंमर	शतपर्णी	महुवा
सलाल	सेजी	फुलचिरिया	ककई	बाधया

गुलहरी	नयान	पीपल	गूलर	केसल
आँवला	सिन्दूरी	भीरा	गमकरया	जोंख (मरोरफली)
हल्दू	मुधरू	बेल	अमलताश	कठमहिला
बीजा	धोबेना	पलाश	आरचिउ	
पीलासिल्ककाटन	कत्था	कारी	बोधसाज	
बहेरा	अर्जुन-कहवा	धवा	बेर	
मकोय	कुसुम	हर्रा	गोड़हर	मेहरोड़न

बान्धवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान में पाये जाने वाले वृक्षों का उल्लेख एक श्रेत्रीय निवासी ने कविता में किया है, कविता इस प्रकार है-

सरई, धवा, विजहरा, सादन, तेन्दू, महुआ, खैर
भिरिया, सालै, अमरा, हल्दो, पीपर, ऊपर, बैर
नीम, बहेरा, करही, शीशम, जामुन, कथा, बमूर
सेमर, हर्रा, सगवन, गुर्जा, कहवा, चार, खजूर

✡ ✡ ✡ ✡ ✡ ✡

महानीम, रोहिना, सम्हेर, करकचहा, ककई, क्यांकर
फुलचुहिया, मड़नहर, कटइया, पीपर, सेझी, घोटहर
कुल्लू, बरगद, लोलश्री, बांसा, चन्दन, कचनारी
रख, चन्दन, जमरासिन, भेलमा, बेर्री, दाह्मन, कारी
पोल्कड़, मूर, बरसजा, काकुल, बेलसइघा कठमोहिला
खरहारी, पतमन, रीजा घोटा, कुम्ही, औ छुइला
धनकट, वरगा, शतपर्णी, कोइलारी, थूहा, बड़हर
सभीं, सरीफा, आमा, कोसम, बीही, नीमू, कटहर

✡ ✡ ✡ ✡ ✡ ✡

बेल से हरुआ, कसही, मुनगा, मेंदी म्यादा, कइमा।
जयमंगल हरज्वार, करौंदा, बान्धवगढ़ के भुइमा॥

श्री सुखनिधान गुप्त
निवासी गाटा दमना
गाइड

बान्धवगढ़ के स्तनपायी वन्य प्राणी

क्र.	सामान्य नाम	क्षेत्रीय नाम	गर्भ काल दिनों में	उपलब्धता	शरीर का वजन किलो में	प्राकृतिक आवास	भोजन
1	टाइगर	शेर,वाघ	105	1	140-230	1.2.34	2.3
2	लियोपार्ड	पेन्थर,तेन्दुआ	90	2	50-60	1.2.34	2.3
3	जंगल/जंगल कैट	जंगली विल्ली	&	2	5-6	1.2.3	2
4	उल्फ	भेड़िया	&	3	18-27	1.2	2.3
5	जेकाल	सियार सीकट	&	1	8-11	1.2.3	2
6	इंडियन फाक्स	लोमड़ी	45-60	2	1.80-3.2	2.3	2
7	इंडियन वाइल्ड डाग	सोनकुत्ता,ढोले	90-120	2	15-20	1.2	2
8	हयाना	लकड़वग्घा जारख	150-180	3	30-38	2	3
9	स्लाथ वियर	भालू,रीछ	210	2	127-145	1.2	2.4.5
10	कामन लंगूर	हनुमान लंगूर	180	1	9-16	1.2	4.6.7
11	रेसस मैकाक	वान्दर	150-180	2	7.10	1.2	4-6-7
12	ब्लू बुल	नीलगाय	240-270	2	200-250	2.3	1.7
13	फोर हार्न्ड एन्टीलीप	चौसिंघा	240	3	20-22	2.3	1
14	चिन्कारा	छिगरी	190	2	23	2.3	1
15	गोर	जंगली भैसा	270	4	500-900	1.2.3.4	1.7
16	साम्भर	साम्भर	240	1	225-320	1.3.4	1.7
17	स्पाटेड डियर	चीतल	210	1	85	1.2.3	1.7
18	वार्किङ्ग डियर	काकड़,भन्सा	-	2	23	1	1.7
19	वाइल्ड बोर	जंगली सुअर	120	1	230	1.2	2.5.6
20	स्माल इंडियन सिवेट	कस्तूरी	-	3	3-4	1.2	2
21	पाम सिवेट	टाडीकैट	-	2	3-4	1.2	2
22	रडीमन्गूज	नेवला	45	2	1.5-3	1.2.3	2
23	कामन मंगूज	नेवला	45	2	1.5-3	1.2	2
24	हनी बैजर	रतेल,काबर बिज्जू	180	4	8-10	1.2	5
25	इंडियन ट्री श्रिय	छछून्दर	-	4	-	1.2	5
26	ग्रेमस्क श्रिय	छछून्दर	-	2	-	2.3	4
27	फ्लाइंग फाक्स	चिमगादड़	-	1	-	2	5
28	इंडियन फाल्स वैम्पायर	चिमगादड़	-	1	-	2	5
29	इंडियन पिप्स्ट्रेल	चिमगादड़	-	1	-	2	4
30	फल्वस फ्रुट वैट	चिमगादड़	-	1	-	2	5
31	ग्रेट ईस्टर्न हार्सशू वैट	चिमगादड़	-	2	-	2	5
32	फाइवस्ट्राइप्ड स्क्वैरेल	गिलहरी	-	1	-	1.2.3	4
33	इंडियन फील्ड माउस	चूहा	-	1	-	2.3	5
34	इंडियन मोल रैट	चूहा	-	3	-	2.3	5
35	इंडियन परक्यूपाइन	सेही	-	3	11-18	1.2	4.6
36	इंडियन हेअर	खरगोश,खरहा	-	1	2-3	1.2.3	1.6
37	पैन्गोलिन	स्केलीएन्टईटर	-	4	-	2	5

Code- (संकेत)

उपलब्धता पर्याप्त (Abundance)	प्राकृतिक आवास [Habitat]	भोजन [Food]
1. सामान्य	1. घना जंगल	1. घास
2. कम	2. खुला जंगल	2. मांस
3. बहुत कम	3. चारागाह	3. हड्डिया
4. बहुत ही कम	4.	4. फूल-फल
		5. कीड़े-मकोड़े
		6. जड़े कन्द
		7. पत्तियां-टहनियाँ
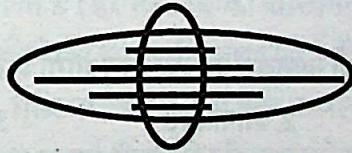
स्तन पायी वन्य प्राणी

बान्धवगढ़ में छोटे बड़े सब मिलाकर लगभग 35 स्तनपायी वन्य प्राणी प्रजातियां पायी जाती हैं, छोटे और मझोले जानवर तो सभी जानते हैं लेकिन बहुत छोटे-चूहा, गिलहरी, खरगोश जैसे प्राणियों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी के अभाव में बहुत कम ज्ञात है ,

पिछले सौ दो सौ वर्षों में इस क्षेत्र से यदि कोई प्रजाति लुप्त हो गई है, तो यह बताना बड़ा कठिन है कि वे कौन-कौन सी प्रजातियां थीं। अब भी यह सुना जाता है कि यहां किसी समय स्वैम्प हिरन थे, गोर थे जो अब नहीं हैं। जंगली हाथी थे जो अब नहीं हैं। यह बात अलग है कि प्रबंधन की ओर से पर्यटकों को जंगल घुमाने के लिये कुछ पालतू हाथी रख लिये गये हैं जो जंगली हाथियों का स्थान लिये हुये है।

यहां स्तनपायी जानवरों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं-

1. मांसाहारी 2. शाकाहारी 3. मिश्रित

मांसाहारी स्तनपायी पशुओं में निम्न बिल्ली प्रजाति के पशु प्रमुख हैं-

बाघ [Tiger]

सामान्य परिचय- नर बाघ की लम्बाई लगभग 9 से 9.5 फीट होती है जब कि मादा की लम्बाई 8 से साढ़े आठ फीट होती है। लम्बाई में पूंछ भी सम्मिलित है। नर बाघ का वजन 180 से 230 किलोग्राम और मादा का लगभग 45 किलोग्राम होता है।

बाघ खाद्य पिरामिड में सबसे ऊपर है यह अनुपम शिकारी है। इसलिये यह प्राकृतिक आवास स्थल तथा पर्यावरण का उत्तम सूचक है। अन्य वन्य प्राणियों के संरक्षण हेतु प्रतीक रूप में भारत में इसका चयन किया गया है। यदि बाघ संरक्षित है तो वन तथा वन में रहने वाले अन्य प्राणी भी संरक्षित है क्योंकि बाघ का प्राकृतिक आवास तो जंगल है। जंगल नही तो बाघ के प्राकृतिक आवास स्थल नहीं। बाघ नहीं तो प्राकृतिक सन्तुलन नहीं। अत:जंगल और जंगल का राजा शेर पर्यावरण तथा प्राकृतिक सन्तुलन की दृष्टि से परमावश्यक है।

बाघ अनिवार्यत: अकेले विचरण करने वाला पशु है। यह अपनी प्रजाति के अन्य प्राणियों के साथ नियमित रूप से साथ में नहीं रहता है। बाघ प्रादेशिक प्राणी है यानी वह एक निश्चित क्षेत्र में रहता है जहां विविध प्राणी रहते हैं।

इसका वनक्षेत्र कितना होता है, यह निश्चित रूप से बताना कठिन है। सामान्यत: यह क्षेत्र 15 से 50 वर्ग किलोमीटर का होता है। जिसमें पानी प्राकृतिक आवास स्थल और पर्याप्त भोजन की उपलब्धता रहती है।

मादा बाघ का भी अपना क्षेत्र होता है जो बाघ के परिक्षेत्र से कम होता है। एक नर बाघ के परिक्षेत्र में सामान्यत: दो या तीन मादा बाघ के परिक्षेत्र रहते हैं। इन मादा बाघों के परिक्षेत्रों को मिलाकर एक नर बाघ का क्षेत्र होता है जिसमें अन्य बाघ नही रह सकता है। यदि कोई बाघ आ गया तो दोनो बाघों में संघर्ष हो जाता है। जो जीतता है, वही उस क्षेत्र का राजा वन जाता है और उस क्षेत्र में रहने वाली मादा बाघों से अपनी सन्तति बढ़ाता है। मुठभेड़ में कभी-कभी उसकी मृत्यु भी हो जाती है।

बाघ एकाकी प्राणी है। हर नर बाघ की चरित्रगत विशेषतायें है। बाघ अपने परिक्षेत्र की अनेक विधि से सीमा-निर्धारण करते हैं,जैसे वृक्षों पर पंजों से निशान अंकित कर देना, भूमि पर खरोंच बना देना, मलत्याग अथवा पेशाव से स्थान को चिन्हित कर देना, वनस्पतियों को चौपट कर देना आदि आदि।

मध्यप्रदेश में उनके प्रजनन का कोई निश्चित मौसम नही है। जब कभी मादा ऋतुमती होती है तभी प्रजनन के लिये नर से जोड़ा बना लेती है। इसके पूर्व मादा के शरीर में विशेष प्रकार की गन्ध बढ़ जाती है और वह आवाज करती है। नर बाघ उसकी आवाज सुनकर उसके पास आता है और उसके साथ हो जाता है। वह मादा के साथ कुछ दिनो से लेकर दो तीन सप्ताह तक साथ मे रहता है। जब दोनो एक दूसरे से शारीरिक सम्बन्ध बनाते है तब बड़ा शोर करते हैं। शान्त तो रहते ही नही हैं।

मादा का गर्भकाल 90 से 105 दिन का होता है और दो से चार बच्चे जन्म लेते हैं। शेरनी बच्चों का पालन-पोषण करती है। शेर सभी स्थितियों में शावकों के प्रति असहिष्णु नहीं होता है। बान्धवगढ़ में ऐसे दृष्टान्त हैं जहाँ शेर जवान बच्चों की उपस्थिति के प्रति सहिष्णु देखे गये हैं और शिकार के समय भी शान्त रहे हैं और उनके साथ रुके रहे हैं जब कि मॉ (बाघिन) उपस्थित नहीं रही है।

जब नर शावक 18-19 माह के हो जाते है तब वे अपनी मॉ का साथ छोड़ देते हैं। मादा शावक कुछ बाद में छोड़ते है। नर शावक अपने अलग परिक्षेत्र का निर्माण करते हैं।

शेर अच्छे भोजन तथा भुखमरी की स्थिति में भी स्वस्थ रहते हैं। एक आकलन के अनुसार शेर एक शिकार को मारने के लिये 20-21 बार प्रयास करता है। शेर 8-10 दिन तक बिना भोजन के भी रह सकता है। बड़ा तथा भूखा नर बाघ एक ही बार में 40 किलो गोश्त खा सकता है। बान्धवगढ़ में इनके मुख्य शिकार प्रजातियाँ चीतल एवं साँभर हैं, यद्यपि वे किसी भी प्राणी को;जो मिल जाताहै, खा लेते हैं। वे प्रसन्नतापूर्वक मांस की खोज करते हैं।

शेर बहुत शान्त और निश्चिन्त होते हैं। यह हर परिस्थिति के अनुकूल ढल जाने वाला प्राणी है। यह सूखे कटीले जंगलो से लेकर मंचूरिया और साइबेरिया जैसे बर्फीले स्थानों में भी जीवित रहते हैं। ये कैस्पियन सागर में रीड वेड में और इंडोनेशिया जेसे पर्याप्त वर्षा वाले जंगलों में भी जीवित रह सकते हैं। किन्तु इनके प्राकृतिक आवासों के विलुप्तीकरण और लोगों के अबैध शिकार के कारण यह प्रजाति विनाश के कगार पर है। जंगलों की बरवादी से इनके प्राकृतिक आवास बिगड़ते जा रहे हैं।

बान्धवगढ़ का शेरों के कारण ही अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन स्थलों मे महत्वपूर्ण स्थान है। शेरों को देखने के लिये यह उत्तम स्थान है। शेर स्वतन्त्रता पूर्वक पार्क में विचरण करते है। कभी-कभी पार्क के मुख्य गेट के पास ही दिख जाते हैं। यहां शेरों की रहाइश के लिये अनुकूल वातावरण और पर्यावरण है। यहाँ घने वन है, खुला भी है। शेर पर्यटकों/दर्शकों को देखते-देखते उसके अभ्यस्त हो गये हैं।

हाल की गणना के अनुसार सम्पूर्ण बान्धवगढ़ क्षेत्र में 72 शेर हैं। यह संख्या कितनी वास्तविक है, कुछ कहा नहीं जा सकता है। अब तो जंगल का क्षेत्र पुराने पार्क की तुलना में चार गुना से भी अधिक बढ़ गया है , लेकिन शेरों की संख्या इस अनुपात में नही बढ़ी है। पुराने पार्क में शेरो का घनत्व दुनिया के किसी भी पार्क अथवा क्षेत्र से बहुत अच्छा था। यहाँ के शेर अन्य क्षेत्रों के शेरों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ हैं।

<u>तेन्दुआ या चीता</u> (Leopard or Panther)

<u>सामान्य परिचय-</u> नर चीता की लम्बाई पूंछ सहित लगभग सात फीट और मादा की लगभग छ: फीट होती है। नर का वजन लगभग 68 किलो और मादा का 50 किलो होता है। शेर की तरह यह भी अकेले विचरण करने वाला, उससे काफी छोटा, फुर्तीला शिकारी प्राणी है। यह सामान्यत: छोटे पशुओं का शिकार करता है-।

यह चीतल, हिरन और छोटे साम्भर (Sambhar) को भी मारने में सक्षम होता है।

तेन्दुओं को बाघों से निरन्तर भय बना रहता है क्योंकि बाघ मौका पाते ही इन्हें मार देते हैं। इसीलिये ये पार्क के अन्दर नहीं दिखाई पड़ते हैं। इनकी संख्या ज्ञात करना कठिन है क्योंकि इनका आकार छोटा है, संख्या कम है। बाघो के भय के कारण ये स्वयं छिपे रहते हैं, तिस पर भी ये पार्क की सीमा पर तथा गांवों के चारो ओर अपेक्षाकृत बड़ी संख्या में हैं।

यह मैदानों में, जहाँ अधिक पेड़ पौधे झाड़-झखाड़ नहीं होते हैं और खाने के लिये भी कम मिलता है, ऐसी परिस्थिति में भी जीवित रहते है। इसी अनुकूलता के कारण ये बाघों की तुलना में अधिक अपने जीवन की रक्षा कर लेते हैं।

तेन्दुओं के प्रजनन क्रिया की कोई पक्की निश्चित ऋतु नहीं है। मादा जब ऋतुमती होती है तो बाघिन की तरह आवाज नहीं करती है। वह एक हल्की, लकड़ी चीरने जैसी आवाज करती है जो आरा से चीरी जाती है। यह ध्वनि प्रणय की इच्छा रखने वाला नर तेन्दुआ भी करता है। माद्रा तेन्दुआ का गर्भकाल बाघिन से अपेक्षाकृत कम होता है।

जंगली बिल्ली (Jungle Cat)

सामान्य परिचय- नर की लम्बाई लगभग तीन फीट और मादा की कुछ कम होती है, वजन 5-6 किलो होता है। पार्क के अन्दर पाई जाने वाली यह प्रजाति छोटे आकार की होती है; यह अकेले विचरण करने वाली प्रजाति सम्पूर्ण पार्क में मुख्यत: घास के मैदान और मिश्रित वन में पाई जाती है। यह कृषकों के खेतों में भी कभी-कभी दिख जाती है।

यह दुबली-पतली लम्बी टांगों वाली भूरे रंग की होती है। इसकी पूंछ के अन्तिम भाग में हल्के रंग के छोटे-छोटे छल्ले होते हैं। इसके पैरों के अन्दरूनी भाग में अत्यल्प लकीरें बनी होती हैं। कान हल्के लाल रंग के होते हैं जिनका ऊपरी भाग काला होता है,

ये दिन में बहुधा दिख जाते हैं। ये गिलहरी, चूहे, खरगोश चिड़ियों का शिकार करते हैं। ये मोरों और जंगली मुर्गियों को भी खा जाते हैं।चीतल तथा मृग के छोनौं को गिरा देते हैं, प्रजनन का समय अनिश्चित है। एक बार में एक से चार बच्चे जन्मते हैं।

भेड़िया (WOLF)

सामान्य परिचय- भेड़िये की लम्बाई 2 से ढाई फीट और वजन 18 से 27 किलो होता है। ये खुले जंगल और खुले मैदान में रहना पसन्द करते हैं, ये बहुधा पार्क से सटे भूभाग में दिख जाते हैं।बहुधा अकेले तथा कभी-कभी जोड़े में दिख जाते हैं।

भेड़िया दुबला-पतला लम्बी टांगो वाला घूसर रंग (राखका) का पशु है, यह बकरियों , कुत्ते के बच्चों को गांव से उठाले जाते हैं ,ये अपने शिकार की तलाश में रात में गांवों में भी घुस जाते हैं।

सियार (Jackal)

सामान्य परिचय- इसे क्षेत्र में गीदड़, सीकट भी कहते हैं। इस की लम्बाई पूंछ सहित लगभग एक मीटर ऊंचाई लगभग सवा फीट (14-16 इंच) वजन लगभग 10 किलो होता है।

यह पार्क के अगल-बगल तथा गावों के समीप और उसके चारों ओर बहुधा दिख जाते हैं। ये सामान्यत: जोड़ो में रहते हैं। कभी-कभी अकेले भी दिख जाते हैं। ये सामान्यत: जोड़ों में रहते हैं। कभी-कभी अकेले भी दिख जाते हैं। इनके चेहरे का रंग सुनहरा भूरा, अधिक काले और भूरे रंग का होता है।

यह बहुत चालाक, तुच्छ तथा भोजन की तलाश में घूमने वाला पशु होता है। यह भेड़िये (wolf) के समीपतम प्रजाति का पशु है। यह रात्रि में भोजन के लिये सड़े मांस की तलाश में अन्य अनेक मांसाहारी जानवरों की तरह घूमता रहता है। शिकार करने की तुलना में भोजन की तलाश करना अधिक सरल है।

यह शिकारी पशु है। शिकार करने में बहुत कुशल होता है। छोटे पशु अथवा उनके छौनों पर यह टूट पड़ता है। यदि चीतल का बच्चा, मृगछौना मिल जाय तो उसका शिकार कर लेते हैं। यदि ये चार-पांच के समूह में होते हैं तो साम्भर के बच्चे और नीलगाय के बच्चों पर भी आक्रमण कर देते हैं; उन्हें गिरा देते हैं। चिड़ियां, गिलहरी, चूहे , खरगोश और किसानों के खेतों में लगी फसलें यथा मकाई, गन्ने , खीरा, ककड़ी आदि इनके भोजन में शामिल है ,

गांवों के आस-पास सायं 'हुआ-हुआ' की आवाज करते भोजन की तलाश में घूमते रहते हैं। यह गांवों में रहने वाले कुत्तों के जंगली संस्करण हैं। इनकी 'हुआ-हुआ' की आवाज ग्रामीणों के लिये चिर-परिचित है।

लोमड़ी (Indian Fox)

सामान्य परिचय- यह 'फ़्याऊँ, फ़्याऊँ ' करके बोलती है इसलिये गांव में इसे 'फ़्याऊँ' भी कहते है। इसकी लम्बाई 2 से तीन फीट तथा वजन 2 से तीन किलो होता है। यह झाड़ी तथा घास के मैदान में रहती है। यह छोटा दुबला-पतला शिकारी प्राणी है। यह भूरे तथा सुनहरे रंग का होता है। इसकी पूंछ लम्बी काले रंग की होती है। पूंछ का अन्तिम सिरा ब्रुश की तरह झब्बरदार होती है। झींगर, टिड्डा, छिपकली, छोटी चिड़िया अन्डे, गिलहरी, चूहे, फल, बैर आदि खाती है। यह बिल में रहती है। जाड़े के दिनों में रात में गांवों के किनारे इसकी 'फ़्याऊँ- फ़्याऊँ ' की आवाज सुनाई पड़ जाती है।

जंगली कुत्ते (Dhole or Indian Wild Dog)

सामान्य परिचय- इसका क्षेत्रीय नाम सोनहा कुत्ता है। इसका यह नाम इसके सोने जैसे रंग के कारण पड़ गया है। गांव के लोग इसे 'सोनहा' भी कहते हैं। यह गांवों में रहने वाले कुत्ते के समान होता है। इसकी लम्बाई पूंछ सहित लगभग एक मीटर, ऊंचाई डेढ़ से दो फीट और वजन लगभग बीस किलो होता है। यह वजन बड़े नर सोनहा का होता है। सामान्यत: ये 12 से 20 किलो वजन के होते है।

बान्धवगढ़ में इनकी संख्या पर्याप्त है। लेकिन दिखते कम हैं। ये निरन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर चलते रहते हैं। ये समूह में घूमते हैं।

इसका सिर बड़ा आगे का भाग और गर्दन माँसल, लम्बा पतला शरीर और घनेबाल वाली पूँछ होती है। सिर काला होता है।

भारतीय वनों में सोनहा कुत्ता का समूह बहुत भयानक और खतरनाक तथा अलग पहचान रखने वाला है। ये अपने शिकार को चिन्हित करते हैं फिर उसका अथक स्थिर पीछा करते हैं। उससे और अपने पीछे छूटे हुये साथियों से एक निश्चित दूरी बनाये हुये, एक विशेष प्रकार की ध्वनि करते हुये पीछे लगे रहते हैं ताकि पीछे छूटे हये अन्य साथी शिकार तक पहुंच सकें। जंगल में रहने वाले वे पशु जिन्हें ये कुत्ते अपना शिकार बनाते हैं सोनहा कुत्तो को देखकर तुरन्त अन्धमुख भागते हैं। सोनहा किसी भी शिकार को जिनमें सॉभर और नीलगाय भी सम्मिलित हैं, भूमि में गिरा देते हैं।

ये अपनी आवश्यकता पूर्ति हेतु ही शिकार करते हैं। ये जंगल की -

वनस्पति का नुकसान नहीं करते हैं। जंगल में जहां ये रहते हैं, वहां सुनसान सा रहता है क्योकि अन्य पशु इनकी उपस्थिति से भयभीत हो जाते है। शेर भी सोनहा से भयभीत हो जाते हैं। वे भी स्थान छोड़ देते हैं , ये निर्भीक होते है। ये वाहनों के समीप तक आ जाते हैं। देखने मे सुन्दर,चुस्त, छरहरे बदन के फुर्तीले शिकारी प्राणी है।

लकड़ बग्घा (Striped Hyaena)

सामान्य परिचय- यह लगभग 5 फीट लम्बा, तीन फीट, ऊँचा होता है। इसका वजन 30 से 38 किलो के मध्य होता है, इसका रंग भूरापन लिये हुये पीला तथा घूसर होता है। इसके पीठ पर आड़ी-तिरछी लकीरें होती है। इसका सिर बड़ा होता है ; शक्तिशाली पंजे होते है। गर्दन और आगे का भाग बड़ा, तथा पीछे से देखने मे कमजोर लगता है, यह खुले जंगल तथा झाड़-झखाड़ वाले स्थान मे रहता है, यह रात्रि में विचरण करने वाला प्राणी है। दिन मे बहुत कम दिखाई पड़ता है, यह रात्रि में भोजन की तलाश मे घूमने वाला मांसाहारी शिकारी प्राणी है, यह स्वयं तो शिकार करता ही है, दूसरो के शिकार पर भी अपना दावा करता है, किसी भी शिकार (kill) पर अपना अधिकार जमाने के लिये यह शेर और चीतों से भी विवाद करता है। कभी-कभी रात्रि में इसकी चिल्लाहट सुनाई पड़ती है।

यह बान्धवगढ़ मे तो है लेकिन इनकी संख्या कितनी है, यह बताना कठिन है।

भालू (Bear)

सामान्य परिचय- भालू की लम्बाई ढाई फीट से साढ़े तीन फीट होती है। इसकी ऊंचाई 2 फीट से तीन फीट तक होती है। वजन 127 से 145 किलोग्राम के मध्य होती है। यह उत्तरी भारत का साधारण नाचने वाला भालू है। मोटे, मद्दे काले वालों वाला यह जानवर बहुत बेढंगा दिखता है। इसका थूथन (मुँह) लम्बा, भद्दा, भूरे रंका का , काफी आगे निकला होता है। इसके पंजे बहुत तेज और लम्बे होते हैं।

अपने भोजन की तलाश मे यह इधर उधर घूमता है। भोजन प्राप्ति के लिये इसे बहुत श्रम करना पड़ता है। इनका प्रिय भोजन दीमक है इसलिये विभोर (दीमक की पहाड़ी) को तोड़ते है और अपनी लम्बी चलित जीभ और ओठों से दीमको को खींच लेते है। ये दीमकों की खोज में बड़े-बड़े गहरे गड्ढे भी खोदते हैं।

ये अपने दोनो पंजो से मिलकर गड्ढे खोदते हैं और आधे शरीर को आगे की ओर गड्ढे मे झुकाकर 'थड़-थड़' की ध्वनि से खोदी गयी मिट्टी को बाहर निकालते हैं। इनकी खरोंच से 'थड़' की ध्वनि विशेष प्रकार की होती है। जड़े, कीड़े, शहद, फल, फूल तथा रात्रि में भोजन की तलाश में मिला हुआ मांस या अकस्मात् मिल गया शिकार इनके भोजन के अंग है।

यह धीरे-धीरे झूमता हुआ भद्दे तथा अजीब ढंग से चलता है। लेकिन अपने शरीर को आगे की ओर बढ़ाकर बड़ी तेज गति से दौड़ भी सकता है। ये कई प्रकार की आवाज करते है जिनमें भय उत्पन्न करने वाली भूंक (भूंकना) और गुर्राना भी शामिल है। यह पैदल चलने वाले मनुष्यों के लिये बहुत खतरनाक है। इसका स्वभाव अस्थिर होता है। यह अपने लम्बे पंजो और दांतो से मनुष्यों को भयानक चोट पहुंचाने में समर्थ है। महुवा गिरने के मौसम में - मार्च अप्रैल में बान्धवगढ़ क्षेत्र में भालू से चोट खाने वाले लोगों की संख्या बढ़ जाती है। कभी-कभी यह लोगों को बहुत बुरी तरह से घायल कर देता है।

यह रात्रिचारी पशु है, इसलिये दिन में सामान्यत: नही दिखाई पड़ता है। बान्धवगढ़ मे इनकी संख्या पर्याप्त है, कितनी है, यह नही बताया जा सकता है।

बन्दर (Apes, Monkeys, Lemurs)

सामान्य परिचय- काले और लाल मुंह वाले बन्दर बान्धवगढ राष्ट्रीय उद्यान में बहुत संख्या में हैं। हम यहां पहले काला मुंह वाले बन्दरों के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं।

इसकी लम्बाई 2 से ढाई फीट तथा पूंछ को मिलाकर तीन से साढ़े तीन फीट, वजन नौ से सोलह किलो के मध्य होती है। इनकी संख्या उद्यान में बहुत अधिक है। छरहरा बदन वाला भूरे रंग का; लम्बी पूंछ, काला मुंह वाला बन्दर जिसे कुछ लोग लंगूर भी कहते है, पूर्णत: शाकाहारी है। यह पेड़ों की छाया में रहता है। पेड़ों की पत्तियां, फल, कलियां और फूल पर निर्भर है। यह निरन्तर कुछ न कुछ खाता रहता है। जितना खाता है उससे अधिक बर्बाद करता है। यह पेड़ से नीचे बड़ी मात्रा में फल-फूल पत्तियां गिराता रहता है जिसे नीचे चीतल चुन:चुनकर बड़े प्यार से खाता है। इस तरह से चीतल और लंगूर का बड़ा मनोरंजक साथ होता है जो कि चीतल के लिये बहुत फायदेमन्द होता है।

लंगूर ; बाघ तथा तेन्दुआ का शिकार-प्रजाति है। जब लंगूर इन शिकारी प्राणियों को देखते है तो कंठ ध्वनियां और भय से तेज आवाज करते है।

उनकी चिल्लाहट किसी शिकारी की उपस्थिति का द्योतक होता है, जब इनका तेन्दुआ से मुकाबला होता है तो ये सब उसके चारों ओर एकत्रित हो जाते है लेकिन बाघ के सामने ऐसा नही करते है। बाघ को देखकर इनके हाथ-पैर फूल जाते है। लोग बताते हैं कि पेड़ के नीचे से जब बाघ लंगूर को देखता है और दहाड़ता है तो लंगूर पके फले की तरह नीचे गिर पड़ते है। बाघ इनको भोजन बनाता है।

भयपूर्ण कंठ ध्वनि के अतिरिक्त लंगूर अपने साथियों के स्वागत में, अथवा जब वे बहुत प्रमुदित होते है या घबड़ाट मे होते हैं या एक दूसरे का भयानक उछल कूद के साथ पीछा करते है या पेड़ो के तने से ऊंची छलांग लगाते हैं तो 'हूप -हूप' की तेज आवाज भी करते है।

इनका गर्भकाल लगभग 180 दिन का होता है। गर्मी के दिनों में अथवा मानसून के प्रारम्भ में बच्चे ज़न्मते हैं।

लाल मुंह वाला बन्दर-

सामान्य परिचय- इसे क्षेत्र में लाल मुहवाले बन्दर को लोग बन्दर या बान्दर कहते हैं। इसकी लम्बाई बिना पूंछ के लगभग दो फीट होती है। इसका वजन सात से दस किलो तक होता है। पार्क के अन्दर तथा बाहर बड़ी संख्या में देखे जाते हैं। ये प्राय: काले मुह वाले बन्दरों से घुल मिल जाते हैं।

ये पार्क के आस पास के गावों में फसलों को बहुत नुकसान पहुचाते है। घरों में घुसकर खाने-पीने की सामग्री उठा ले जाते हैं। लंगूर की तुलना में यह जमीन पर अधिक रहता है। यह मुख्यत: शाकाहारी है। लेकिन कीड़ो, मकड़ी-मकड़ा से अपने भोजन की पूर्ति करता है।

यह छोटा- नाटा, भूरे रंग का होता है। इसकी पूंछ छोटी और मोटी होती है। चेहरा लाल होता है। इसका पूंछ के पास का हिस्सा और कमर सन्तरे की तरह लाल होता है।

नील गाय [Blue Bull]

सामान्य परिचय- इसकी ऊँचाई लगभग साढ़े चार फीट से पांच फीट तक होती है। वजन 200 से 350 किलोग्राम तक होता है। मादा अपेक्षाकृत छोटी होती है। यह खुले जंगल और सूखे स्थान में बहुत सामान्य है। पार्क के समीप-क्षेत्र में चारागाहों तथा मैदानों में चरते हुये देखी जा -

सकती है। देखने में यह भद्दी, बड़े आकार की होती है नर घोड़े से मिलता-जुलता है।

नर भूरे-नीले रंग के होते हैं। सींगे छोटी और मोटी ठूंठ जैसी होती हैं। मादा के सींगे नहीं होती हैं। रंग धूसर (राख जैसे) होता है। नील गाय सामान्य: समूह में दिखाई पड़ते है। समूह में मादा और बच्चे होते हैं।

नर का समूह पर विशेष महत्व होता है। नर अकेले अथवा नर ही नर समूह में रहते है।

चौसिंघा [Four horned Antelope]

सामान्य परिचय- चार सींग होने के कारण इसे चौसिंघा कहते है। इसकी ऊंचाई 2 फीट से ढ़ाई फीट तक होती है। मादा नर से कम ऊंची होती है। यह अकेले रहता है, बहुत कम देखने को मिलता है। कभी-कभी जोड़े मे अथवा मादा बच्चों के साथ रहता है। एक अवसर पर दो बच्चे एक ही मादा के साथ देखे जाते हैं। यह पहाड़ी प्रदेश , खुला और सूखा जंगल अधिक पसन्द करता है। नर के चार सींगे होती है। ये छोटी होती है। सामने की सींगे छोटी और ठूंठ जैसी होती हैं जबकि पीछे की सींगे कुछ इंच लम्बी होती है। यह स्वभाव से बहुत शर्मीला होता है। इसका रंग लाल-भूरा और टांगे लम्बी होती है। यह खड़ी अवस्था में रहता है, खड़े-खड़े ही सो लेता है।

चिंकारा [Chinkara]

सामान्य परिचय- इसको कहीं-कहीं छिगरी अथवा चिंकारा कहते हैं। इसकी ऊंचाई दो फीट से ढ़ाई फीट तथा वजन लगभग 20-25 किलोग्राम होता है। मादा कुछ कम होती है। वजन में भी और ऊंचाई मे भी। पार्क में इनकी संख्या अधिक नहीं है। यह खुली जगह में जहां वन सघन नही है ; वहां रहता है। जंगल के किनारे पार्क के क्षेत्र में चारो ओर पाये जाते हैं। छोटे-छोटे समूहों मे, 2-4 मादा, एक नर अथवा जोड़ों या एकाकी रहते हैं। पार्क मे गोहनी चारागाह में इन्हे देखा जा सकता है।

देखने में सुन्दर,कोमल,हलका पीला-भूरा रंग का, चेहरे के दोनों ओर एक सफेद लकीर नीचे तक बनी होती है। नर की सींगे अंग्रेजी अक्षर एस (S) की शकल के दस इंच से एक फीट तक लम्बी होती है। मादा की सींगे छोटी और पतली होती है।

गोर [GAUR]

सामान्य परिचय- इसे लोग जंगली भैंसा कहते हैं। इसकी ऊंचाई लगभग छः फीट से साढ़े छः फीट और वजन 750 से 900 किलोग्राम तक होता है। मादा का वजन कम होता है। इसे भ्रमवश कभी- कभी जंगली सांड (BISON) कहा जाता है जो गलत है।

उद्यान में इनकी संख्या अधिक कभी नहीं रही है। यह फरवरी से बरसात तक देखा जाता था। पहाड़ी स्थानों में रहना इसको अधिक प्रिय है। गर्मी के दिनों में जब भोजन कम हो जाता है , घास सूख जाती है, तब यह पहाड़ों से नीचे उतरकर तराई क्षेत्रों में आ जाता है। चारागाहों में बार-बार आता है जहां घास और पानी की उपलब्धता होती है।

विश्व के चौपाये ढोरों गाय बैल भैंस आदि में यह सबसे बड़ा होता है। नवयुवक गोर देखने में बहुत शानदार होता है, विशाल मांसल चौड़ी पीठ, दोनों ओर गोलाकार झुकाव, अन्दर की ओर धंसा हुआ सीना, बड़ा सिर और झुकी हुई सींगे काली चमकती हुई चमड़ी, ऐसे पशु का चित्र प्रस्तुत करती है जो शक्ति और ओज का प्रतीक होता है। मादा अपेक्षाकृत काफी छोटी होती है। इसकी चमड़ी चाकलेटी रंग की होती है।

बान्धवगढ़ के गोर पहेली जैसी स्थिति उत्पन्न कर दिया। 1980 से 1990 के मध्य इनकी कार्यालयीन संख्या 36 थी जिनमें 17 नियमित रूप से देखे जाते रहे। 1998 से ये किसी को नही दिखाई पड़े। लुप्त हो गये। ऐसा क्यों हुआ ? इसका कारण अज्ञात है। ऐसा अनुमान लगाया जाता रहा कि गोर के बच्चों को बाघ तेन्दुओं ने शिकार कर लिया होगा। इसलिये इनकी संख्या इस स्थिति में पहुंच गयी।

नर्मदा नदी के उत्तर में बान्धवगढ़ में ही गोर थे।

इनके समूह की संरचना (झुण्ड का आकार) निश्चित नहीं रहती है। ये निरन्तर मिलते-बिछुड़ते रहते है। ये सुअरों की तरह गुर्राने तथा घुरघुराहट की ध्वनि करते है। धौकनी की तरह फू-फूकरते हैं। नर बहुधा तुरही की तरह आवाज करते हैं जो काफी दूर तक सुनाई पड़ती है।

साम्भर [Sambhar]

सामान्य परिचय- इसकी ऊंचाई लगभग पांच फीट और वजन 225 किलो से 320 किलोग्राम होता है। यह भारतीय हिरनों मे सबसे बड़ा होता है। जाड़े के दिनों मे इनकी चमड़ी खुरदुरी, गहरे भूरे रंग (चाकलेटी) की होती है। नर की अधिक गहरे भूरे रंग की होती है। नर के गले में बालो का घेरा (छल्ला) बना होता है और बड़ी-बड़ी सीगें होती हैं। गर्मी के प्रारम्भ मे जब बाल झड़ जाते है और गर्मी में हल्के भूरे रंग की चमड़ी हो जाती है तो साम्भर बहुत भद्दा, मैला कुचैला दिखता है।

गर्मी के दिनों में सीगें गिर जाती हैं और बरसात में पुन: उग आती है। जाड़े और बसन्त के मौसम मे साम्भर सुनने लायक कोई आवाज नहीं करते हैं।

इनका गर्भकाल सात माह का होता है। नर साम्भर की परस्पर शत्रुता कभी-कभी भयानक युद्ध का रूप ले लेती है जिसमें से एक या दोनों की मृत्यु तक हो जाती है।

चीतल की तरह साम्भर भी बाघ, तेन्दुआ और सोनहा कुत्तों के शिकारों की प्रजातियों में बहुत प्रमुख प्रजाति है। चीतल की तरह साम्भर समूह में रहने वाला प्राणी नहीं है। वर्ष के अधिकतम भाग में अकेले या 3-5 के समूह में देखे जा सकते है। गर्मी के मौसम में सबसे बड़ा जमावड़ा होता है जब 9 से 12 संख्या तक के समूहों में देखे जा सकते हैं। वर्ष में यही समय है जब वे चारागाह और पानी के स्त्रोतो के आसपास एकत्रित हो जाते हैं।

बान्धवगढ़ में इनके निवास की आदर्श व्यवस्था है। ये बान्धवगढ के पूरे क्षेत्र में व्यापक रूप से फैले हुये हैं। चीतल की अपेक्षा ये पानी के अधिक समीप रहते हैं।

धब्बेदार हिरन [Spotted Deer] (चीतल)

सामान्य परिचय- इसे लोग चीतल कहते हैं। इसकी ऊँचाई तीन फीट और वजन 85 किलोग्राम तक होता है। मादा की ऊँ चाई और वजन कुछ कम होता है। खुरदार चौपाये जानवरों में चीतल भारतीय उपमहाद्वीप में सर्वत्र पाया जाता है।

यह जंगल के किनारे रहने वाला प्राणी है। यह जंगल का उपयोग अपनी सुरक्षा और शरण के लिये करता है। जंगल से बाहर निकलकर घास के मैदान में और कटे हुये जंगल भूमि में चरते हैं।

इनका रंग गहरा सुनहरा-भूरा होता है, शरीर में, मुख्यत: पीठ में सफेद धब्बे बहुतायत में होते हैं, सिर में दो सीगें होती है। दोनो में तीन-तीन नुकीले कांटे होते हैं।

चीतल वर्ष भर प्रजनन करते हैं, किन्तु गर्भाधान की शीर्ष स्थिति जनवरी और मई के बीच होती है, गर्भकाल का समय पांच माह है। चीतल (Stags) गर्भाधान हेतु कर्कश, रूखा, तेजी से गधे की तरह रेकतें (Bray) हैं । खतरे के समय तीक्ष्ण कर्णभेदी स्वर में चीखते हैं।

चीतल का लंगूर के साथ मनोरंजक सम्बन्ध होता है, क्योंकि बन्दर पत्तियां खाते समय बड़ी मात्रा में पत्तियां और फल-फूल नीचे गिराते हैं, चीतल उन्हें खाते हैं।

चीतल बाघ के शिकारों में से प्रमुख शिकार है।

[Muntgac or Barking Deer]

सामान्य परिचय- इसकी आवाज के कारण इसे भंसा या काकड भी कहते हैं। इसकी ऊंचाई दो से ढाई फीट और वजन लगभग 23 किलो होता है। मादा नर से छोटी व कम वजन की होती है।

यह अकेला विचरण करने वाला, शर्मीला जंगल का प्राणी है। आपत्ति या भय के समय यह कुत्ते के समान आवाज करता यानी भौंकता है। इसका रंग फीका चमकदार लाल और भूरा होता है। चेहरे और घुटने के नीचे काले धब्बे, नर की छोटी-नुकीली सींगे, कुछ इंच ऊँची होती है। यह अत्यधिक आशंकित, अत्यधिक उत्तेजित और दशहत में रहने वाला प्राणी है। जरा सी उत्तेजना या आशंका से अत्यधिक व्याकुल हो जाता है और तेजी से भागता है। यह छोटे शिकारी जानवरों का शिकार प्रजाति है।

भारतीय जंगली सुअर [Indian Wild Boar]

सामान्य परिचय- इसे सुअर कहते हैं। इसकी अधिकतम ऊँचाई लगभग तीन फीट और वजन लगभग 230 किलोग्राम होता है। मादा नर से छोटी होती है। पार्क के अन्दर इनकी संख्या बहुत है। ये पार्क से निकलकर -

आस - पास के गांवों के किसानों की फसलों की भी हानि करते रहते हैं। सुअर के बच्चे तेन्दुआ (Leopards) के प्रिय आहार हैं लेकिन जवान सुअर भयानक होते हैं। वे बाघ से भी टक्कर ले लेते हैं। इनका प्रजनन बहुतायत में है अत: इनके लुप्त होने का खतरा नहीं है।

नव जवान सुअर के बाल सख्त, मोटे, रूखे , काले होते है। बालों की कलंगी पीठ के नीचे तक रहती है, मादा अपेक्षाकृत अधिक भूरे रंग की और छोटी होती है।

सुअर पेड़ों की जड़े, जमीन के अन्दर के कीड़े-मकोड़े कन्द, मांस आदि खाते हैं, रात में भोजन की तलाश में घूमते है, जहां कही सम्भव होता है, शिकार भी करते है, एक अवसर पर दो सुअर एक सियार को पकड़कर फाड़ते हुये देखे गये थे, इसके बाद उसे भोजन की तरह खाये। ये किसानों की फसलों के शत्रु हैं।

कस्तूरी मृग [Small Indian Civets]

सामान्य परिचय- यह छोटा रात्रिचर प्राणी है। इसकी लम्बाई तीन फीट पूँछ सहित और वजन 3-4 किलोग्राम होता है। यह शायद ही कभी दिख जाता है। लेकिन इसके पद चिन्हों से यह ज्ञात होता है कि बान्धवगढ़ पार्क में ये हैं।

यह धूसर भूरे रंग का होता है। इसकी पीठ में लकीरें बनी होती हैं और अगल-बगल व्यवस्थित रूप से धब्बे पंक्ति में बने होते है, जो लम्बे, ऊंचे काले पतली (संकीर्ण) गोलाई से घिरे रहते हैं।

यह छोटी चिड़ियां, चूहा, गिलहरी , छिपकली, अंडे आदि पर निर्भर होता है।

कस्तूरी [Common Palm Civet or Toddy Cat]

सामान्य परिचय- इसे कस्तूरी कहते हैं, इसकी पूंछ सहित लम्बाई चार फीट और वजन 3-4 किलोग्राम होता है, यह काला तथा कालापन लिये हुये भूरे बाल वाला प्राणी है, यह उक्त कस्तूरी मृग (Civet) से कुछ बड़ा होता है।

यह छाया में रहने वाला वाला प्राणी है। बहुधा पेड़ों में रहता और पेड़ों में ही भोजन की तलाश करता है। यह कभी कभी मार्च के महीने में पेड़ों के फलों को खाते हुये दिख जाते है। यह शर्मीला नहीं होता है।

यह बहुत कम दिखता है क्योंकि यह रात्रि में घूमने वाला प्राणी है, यह उक्त वर्णित कस्तूरी मृग की तुलना में अधिक संख्या में है। कभी-कभी रात्रि में वाहन से जाते हुये सड़क के किनारे दिख जाते हैं।

नेवला [Mongooses]

लालिमायुक्त नेवला-

सामान्य परिचय- इसको क्षेत्र में नेवला कहते हैं। इसकी लम्बाई पूंछ सहित तीन फीट और वजन डेढ़ से तीन किलो होता है। पार्क के अन्दर बहुतायत में है। बहुधा दिन में दिख जाता है। यह बहुत सक्रिय और तेज दौड़ने वाला फुर्तीला प्राणी है। लालधारी वाला नेवला अन्य इसी प्रजाति से पृथक पहचान इसकी पूंछ बनाती है। इसकी पूंछ का सिरा काला होता है और ऊपर की ओर मुड़ी रहती है।

2. साधारण नेवला [Common Mongooses]

सामान्य परिचय- इसे सामान्यत: नेवला या नेवरा कहते है। यह आकार में लाल नेवले के बराबर होता है। यह लाल नेवला की तरह पार्क में बहुत सामान्य नहीं है। यह अधिक खुले मैदान में-खेतों और गांवों की सीमाओं में पाये जाते हैं।

यह पीलापन लिये हुये भूरे रंग का होता है जेसे कि गहरे और हल्के रंग के ऊन-धागे परस्पर बुने होते हैं। इसकी पूंछ लम्बी मोटी होती है। सिरे में सफेद और पीला-लाल होती है।

साँप और नेवले की शत्रुता जगजाहिर है। साँप को देखते ही उस पर आक्रमण कर देता है।

विज्जू [Weasel]

सामान्य परिचय- इसको क्षेत्र में विज्जू कहते हैं। इसकी लम्बाई पूंछ सहित लगभग ढाई फीट और वजन 8 से 10 किलोग्राम होता है। पार्क में इनकी संख्या कम है। यह रात में विचरण करने वाला प्राणी है, इसलिये बहुत कम दिखाई पड़ता है।

यह शक्तिशाली जीव है। इसके पैर चौड़े और पंजे लम्बे होते हैं। इसके शरीर का ऊपरी भाग भूरा से लेकर सफेद होता है।

यह शाकाहारी और मांसाहारी होता है। यह छोटे जीवों, चिड़ियों, साँपों, फलों, शहद, चिड़ियों के अंडों, चूहों पर निर्भर होता है। इसका चेहरा नुकीला होता है। यह बिलों में रहता है।

कीट भक्षक [Insectivore]

सामान्य परिचय- यह सामान्य नहीं है। कभी-कभी खुले जंगल में दिख जाता है। इसकी सूरत शक्ल और इसका आकार गिलहरी की तरह का होता है। लेकिन इसका चेहरा अधिक नुकीला होता है। ऊपर से भूरा, गले और सीने में लगभग सफेद, पेड़ों में चढ़ने मे बहुत कुशल होता है। यह जमीन में कीड़े-मकोड़े-कभी-कभी छोटी चिड़ियों, फलों और छोटे-छोटे प्राणियों को खाकर जीवित रहता है।

छुछून्दर [Grey Musk Shrew]

यह बहुत सामान्य है। बान्धवगढ़ के चारों ओर इसकी प्रजातियां पाई जाती है। लेकिन इनके सम्बन्ध में सही जानकारी नहीं है।

चमदागड़ [Bats]

अब तक बान्धवगढ़ में इसकी चार प्रजातियों की पहचान की गई है। पार्क में इनकी उपस्थिति बहुत है। सम्भवत: पार्क में इनकी और भी प्रजातियाँ अस्तित्व में हो।

चमदागड़ [Flying Fox]

यह एक प्रजाति है। इसके पंखों का फैलाव लगभग चार फीट का होता हैं। इसका सिर लाली लिये हुये भूरा होता है। गर्दन के चारों ओर सुनहला छल्ला बना होता है (golden fulvous band) रात में पेड़ों में फल खाते देखा जाता है। पीपल और बरगद तथा अमरूद के फल जब पकते हैं तब उनमें ये बड़ी संख्या में रात में आते हैं। इन्हे पीपल का फल बहुत पसन्द है।

चिमकादर [Fulvous Fruit Bat]

इसका क्षेत्रीय नाम चिमकादर है। इसके पंखों का फैलाव लगभग एक फीट होता है। इसकी लम्बाई लगभग पांच-साढ़े पांच इंच होती है।

रात में आम जामुन के फलदार पेड़ों में समूह में देखे जा सकते हैं। टार्च की रोशनी में इनकी आंखे चमकती लालरंग की दिखती हैं। ये अपनी प्रजाति के बड़े आकार वालों की तुलना में जल्दी परेशान हो जाते हैं। इनकी बड़ी प्रजाति वाले अधिक शान्त होते हैं और वे जल्दी आन्दोलित नहीं होते है ।

चमगादड़ [Greater False Vampire]

ये गुफाओं में बसेरा लेते हैं। पहाड़ी की कन्दराओं में सरलता से देखे जा सकते हैं। इनका रंग भूरा होता है इनके कान बड़े और नाक छोटी होती है,

इनका भोजन बड़े-बड़े कीड़े-मकोड़े छोटे- छोटे रेंगने वाले जीव (सांप) और चिड़ियां हैं।

चमगादड़ [Indian pipistrelle]

पंखों का फैलाव 8-10 सेन्टीमीटर (3 से 4 इंच) और लम्बाई 46 मिलीमीटर (लगभग 2 इंच) होती है यह बहुत छोटा आकार का चमगादड़ है। प्रात: जल्दी ही अपने शिकार के लिये निकल पड़ता है। यह बहुत अधिक दिखता है। यह कीड़े-मकोड़ों का भक्षक है।

कुतरने वाली प्राणी [Rodents]

गिलहरी [Five striped palm squirrel]

पूँछ सहित इसकी लम्बाई 28 सेन्टीमीटर (लगभग ग्यारह इंच) होती है। जंगल और बगीचों में बहुत सामान्य है। इसकी कई प्रजातियाँ है। यह तीन धारी वाली और पांच पीली धारियों वाली से पृथक है। ये धारियाँ पीठ में होती है।

यह फल-फूल, छाल और गुठलियां खाती है। बार-बार तेज तीखी ध्वनि करती है जो चिड़ियों की ध्वनि के समान होती है।

घूस [Indian Mole Rat]

इसे क्षेत्र में 'घुइस' कहते हैं। इसकी लम्बाई 18 सेन्टीमीटर (लगभग सात इंच) होती है। इसके सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं है। लेकिन बान्धवगढ में इस प्राणी का अस्तित्व है।

यह स्वस्थ, मजबूत प्राणी है। इसका थूथन(मुँह) छोटा और चौड़ा होता है। यह अपने थूथन से मिट्टी खोदकर ढेर लगा देता है। मिट्टी के ढेर से इसकी उपस्थिति का संकेत मिल जाता है।

इसके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या में खेतो में रहने वाले चूहा और चुहियां है। चूहो की अन्य प्रजातियों में ऐसी भी प्रजातियां है जो झाड़ी और पेड़ तथा लकड़ी वाली चुहियां भी है। लेकिन इनके पहचान के लिये सार्थक प्रयास नहीं किये गये हैं।

साही [Indian Porcupine]

सामान्य परिचय- इसकी लम्बाई 60 से 80 सेन्टीमीटर यानी लगभग दो फीट से ढाई फीट और वजन 11 से 19 किलोग्राम होता है। यह रात्रिचर प्राणी है। इसलिये बहुत कम दिखाई पड़ता है। लेकिन इनके पद चिह्न, मल आदि को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि पार्क में इनकी संख्या सन्तोष जनक है।

इनके शरीर के ऊपर के वाल लम्बे और कांटे के रूप में होते हैं। ये समूह के रूप में खोदे गये बिलों या गुफाओं में रहते हैं। इनका भोजन पेड़ की जड़ें, कन्द , वनस्पतियां , फल तथा पेड़ों की छाल आदि है। शरीर में कैल्सियम की पूर्ति के लियें हड्डियाँ और मृगश्रृंग चबाते हैं।

बाघ और तेन्दुआ इनके प्रति विशेष रूचि रखते प्रतीत होते है, यद्यपि वे इनके कांटों से बहुधा अपने को चोट पहुँचा लेते हैं। इनके कांटों से बने घाव पक जाते हैं, विषाक्त हो जाते हैं।

खरगोश [Hares]

सामान्य परिचय- इनकी लम्बाई 40-50 सेन्टीमीटर यानी 16 से 20 इंच और वजन लगभग डेढ़ से दो किलोग्राम होता है। इनका लाल-भूरा तथा कालापन लिये हुये भूरा रंग होता है। पेट की ओर का रंग हल्का होता है।

यह पार्क में सर्वत्र फैले हुये हैं। जब ये अपने भोजन की तलाश में बाहर निकलते हैं तो बहुधा देखे जाते हैं। ये खुले जंगल में सम्पूर्ण पार्क में विद्यमान है।

पैंगोलिन [Pangolin]

सामान्य परिचय- पंख सहित इनकी लम्बाई 105 से 115 सेन्टीमीटर होती है। पार्क में इनकी संख्या बहुत कम है।

पैंगोलिन के विस्तृत फैले हुये डैनों की पतली मजबूत परत जो एक दूसरे को ढके रहते हैं, कवच का काम करती हैं , इनके पंजे बहुत शक्तिशाली होते हैं जिससे ये अपने शिकार को पकड़ते हैं। दीमक, चींटी, सांप के बच्चे, चूहे इनका भोजन है।

हाथी [Elephant]

कहा जाता है कि बान्धवगढ़ जंगल में अठारवीं, उन्नीसवीं शताब्दी में हाथी थे। लेकिन अब उनका स्थान पालतू हाथियों ने ले लिया है। अब यहां पालतू हाथियों का एक समूह है।

हाथियों का उपयोग पर्यटन और पार्क में गश्त लगाने के कार्य में किया जाता है विशेषकर वर्षाऋतु में जबकि चौपहिये वाहनों के लिये मार्ग बन्द रहते हैं।

बान्धवगढ़ नेशनल पार्क के प्रबन्धन ने पालतू हाथियों से प्रजनन क्रिया सफलतापूर्वक चलाया है। ऐसे स्थान दुनिया में बहुत कम है जहां बन्धन की स्थिति में रहते हुये हाथियों ने इतने बच्चे उत्पन्न किये हैं जितने कि बान्धवगढ़ में।

चिड़ियाँ (Birds)

बान्धवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान वन्य प्राणियों के लिये प्रसिद्ध है। इसकी ख्याति एक बड़े पक्षी-पार्क के रूप में नही है। फिर भी यहां बड़ी संख्या में पक्षियां पाई जाती है। अत: इनकी ओर भी ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय उद्यान में अनेक प्रजातियों की पक्षियां पाई जाती है। इनकी संख्या लगभग 250 है। इतनी अधिक संख्या में पायी जाने वाली प्रजातियों का कारण उनके प्राकृतिक आवास स्थलों की विविधता है और पर्यावरणीय स्थिति है। पार्क की स्थिति भी चिड़ियों के उड़ान मार्ग में है जो मौसम के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान उड़कर जाती है। इसलिये यहां अनेक पर्यटक पक्षी बड़ी संख्या में दिखाई पड़ते हैं।

पार्क के पर्यटक पक्षियों के सम्बन्ध में कुछ रोचक पहलू है। प्रथन तो यह कि बड़ी संख्या में पक्षियों की अनेक प्रजातियां वर्ष में एक या दो बार ही दिखाई पड़ती है। एक या दो बार दिखाई पड़ने का कारण उनका पार्क में इधर-उधर घूमना है और वे फिर पार्क से बाहर चली जाती है। इस तरह उन्हें घुमन्तू अथवा क्षेत्रीय पर्यटक की संज्ञा दी जाती है। चिड़ियों की अनेक प्रजातियां पार्क के अन्दर एक सीमित क्षेत्र में घूमती रहती हैं या क्षेत्र विशेष में भोजन की तलाश में भटकती रहती हैं अथवा पास-पड़ोस में उपयुक्त स्थान में चली जाती है। जब एक सीमित क्षेत्र की बात होती है तो एक हजार किलोमीटर दूर से आने वाली चिड़ियां तथा सौ पचास किलोमीटर दूर से आने वाली चिड़ियाँ दोनो ही प्रवासी है जो उपयुक्त जलवायु के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान जाती है। दूसरा मनोरंजक पहलू यह है कि यहां पहले से रह रही चिड़ियों की उपस्थिति का कोई अभिलेख भी नहीं है। अधिकांश चिड़ियां हिमालयन तथा उपहिमालयन प्रजातियों की है, इनकी उपस्थिति दक्षिणी श्रेणियों तक देखी जा सकती है। जहा तक पर्वत श्रेणियों की बात है, वह परेशानी वाली बात है क्योंकि चिड़ियों का अधिक सम्बन्ध भौगोलिक स्थिति की तुलना में समुचित प्राकृतिक आवास स्थल से है। यह तो हम लोग है जो लगातार उनके रहने के स्थान का वर्गीकरण करते रहते हैं, कि ये अमुक क्षेत्र मे पाई जाती है, ये अमुक क्षेत्र में। किन्तु वे स्वयं इस प्रकार के वर्गीकरण की ओर सावधान नही रहते है। ईश्वर ने उन्हें स्वंत्रता का सर्वोच्च उपहार दिया है, सारा आकाश उनका है, ईश्वर ने उन्हें पंख दिये है, वे चाहे जहां जायें, रहे। उनके लिये कोई रोक टोक -

नही है। हां, हमीं लोग रोक टोक करते हैं। और उनके उन्मुक्त वातावरण में बाधा पहुंचाते हैं।

चिड़ियां हमारे मनोरंजन के लिये बहुत सरल सीधे प्राणी हैं। वे हर कहीं है। हम उन्हें हर समय सावधान, सक्रिय तथा कुछ न कुछ करते हुये देखते हैं। वे बहुत आकर्षक और मनोरंजक होते है। वे कभी भी निष्क्रिय तथा आराम करते या सोते नही दिखते हैं। इनका संसार बड़ा विशाल है तथा इनके सामने अपने अस्तित्व के लिये मनुष्य की ओर से विभिन्न प्रकार के अवरोध तथा संकट भी है।

जंगल को संगीत से चिड़ियां ही भरती हैं, उसे ओत प्रोत करती हैं। प्रात: सायं चिड़ियां ही अपने गायन से जगल में मंगल करती है। इनका गायन मधुर और कर्णप्रिय लगता है। किन्तु कुछ पक्षियों की ध्वनियॉ कर्णकटु और अप्रिय भी लगती है। ब्रेन फिवर पक्षी की ध्वनि कुछ लोगों के लिये बहुत अप्रिय होती है। जब यह पक्षी आधी रात में खिड़की के आस-पास बोलती है तो सुनने वाले को बहुत अप्रिय लगता है, उसे बुखार सा चढ़ आता है., सामान्यत: चिड़ियों की ध्वनि बहुत कर्णप्रिय होती है। कोयल की कूक सुनने को कौन नही उत्सुक होता है ?

चिड़ियां हमारे लिये ईश्वर की ओर से दिये गये सुन्दर सजीव खिलौने है। इनका पर्यावरणीय महत्व भी बहुत अधिक है। पर्यावरण को स्वस्थ स्थिति मे बनाये रखने में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। ये दिन भर कीट-पतंगो तथा मानव-स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने वाले जीवाणुओ का खाती रहती है। इस प्रकार ये हमारे मित्र है, सहयोगी है, सहायक हैं।

चिड़ियों की विविध प्रजातियों की उपस्थिति,अनुपस्थिति, बहुलता, न्यूनता किसी निर्धारित क्षेत्र में विशिष्ट कालखण्ड में सावधानीपूर्वक यदि परीक्षण-निरीक्षण किया जाय तो प्राकृतिक आवास स्थल के स्वास्थ्य एवं स्तर की अच्छी जानकारी ज्ञात हो सकती है। ये प्राकृतिक स्वास्थ्य नापने के बैरोमीटर है। यदि किसी प्रजाति की चिड़ियां किसी स्थान में कल तक थी, आज नही है, तो इसका यह अर्थ लगाया जाना चाहिये कि पर्यावरण अथवा प्राकृतिक आवास स्थल में शोचनीय परिवर्तन हो गया है।

चिड़ियों के देखने के उत्तम स्थान जंगल में है। सामान्यत: जंगल में ये वे स्थान है जहां जंगल घना नही है, या वे स्थान जो जंगल के किनारे है, जो चारागाह है। घास के मैदान है। नदियों के किनारे हैं। पानी के स्त्रोत है, या फल -

से लदे वृक्ष है। ये वृक्ष मुख्यत: पीपल, बरगद जैसे वृक्ष है। ऐसे स्थानो में चिड़ियां देखी जा सकती है और उनके कलरव सुने जा सकते है।

पार्क में चिड़ियों के देखने के कुछ विशिष्ट स्थान निम्न है :-

शेषशैय्या- किले के उत्तरी भाग में नीचे एक मानव निर्मित टैंक है उसमें विष्णु की एक लेटी हुई प्रतिमा है। यहां ऊपर से झर रहे पानी को टैंक में संग्रह कर लिया जाता है। वह पानी एक स्थान से नीचे की ओर निकलता रहता है जों चरणगंगा नदी को जन्म देता है। शेषशैय्या से चरणगंगा का उद्भव होता है। यहां सदैव आर्द्रता और हरियाली बनी रहती है। यह जंगल का वह भाग है जहां जंगली बांस, सरकंडा, बेंत बहुतायत में हैं।

आप यहां से किले के दरवाजे तक पैदल चढ़ सकते हैं। चढ़ते समय आप खड़ी ऊंची चट्टान की ओर दृष्टि डालिये। आपको शाही शिकारी के जोड़ों का आवास दिख जायेगा। जाड़े के मौसम में कभी-कभी हार्न विल्स (Hornbills) मिल जायँगे। ये पक्षी किले को लगभग वर्ष भर अपनी रहाइश बनाये रहते हैं और बहुधा किले के किनारे दिख जाते हैं या उनकी आवाज सुनाई पड़ जाती है।

जमुनिया- जमुनिया एक छोटा संकरा गहरा नाला है जिसके किनारे जामुन के असंख्य पेड़ है। जामुन के पेड़ों के कारण इसका नाम जमुनिया पड़ गया है।

यह किले के गेट से लगभग 1.5 (डेढ़) किलोमीटर दूर है। यह उगी हुई धनी वनस्पति से पूरी तरह आच्छादित है। पानी की धारा यहां उथला-लम्बा तालाब के रूप में है।

आप यहां ब्राउनफिश आउल पक्षी देख सकते है, यह पक्षी यहां प्रजनन करती है। यहां यह पक्षी सामान्यत: सरलता से देखी जा सकती है। दिन में सबेरे शाम कभी भी इन्हें देख सकते है।

बन्धान- किले के दक्षिण की ओर एक सुरक्षा चौकी है। उसी के समीप एक पानी का बड़ा स्त्रोत है। यहां भूमि का एक भाग बहुत आर्द्र है।

यह स्थान लम्बी टांगो वाली चिड़ियों के रहने का अच्छा स्थान है, यहां शीतऋतु में जंगली मुर्गी भी देखी जा सकती है।

दमनार बांध- यह राजबहेरा और सेहरा नामक चारागाहों के मध्य स्थित है यही से दमनार नदी निकलती है। वह स्थान ऊँचे साल वृक्ष, जामुन के पेड़ों से अच्छी तरह से आच्छादित है। यह स्थान कुछ खुला है। यहीं बांध बनाया गया है और जल एकत्रित किया गया है। यह बांध लगभग 150 मीटर लम्बा और 30

मीटर चौड़ा है। इसकी गहराई लगभग चार मीटर है।

यहां धूसर (राख) रंग के सिर वाले, मछली मारने वाले, शिकारी पक्षी बाज को देख सकते हैं। ये पक्षी इस बांध पर कभी-कभी आ जाते हैं। यहां मछली पकड़ने वाले दूसरे पक्षी को भी देख सकते है जिसे क्षेत्रीय लोग उल्लू कहते हैं। लेकिन इसको देखना बहुत सरल नहीं है। गर्मी के दिनों में यहां लम्बी चोंच वाली किंग फिशर घोंसला बनाते हैं, अन्डे देते हैं, चूजों को पालते हैं।

यहां बड़ी टांगो वाले बकुला भी थे। अब वे इस पूरे क्षेत्र मे धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। वे भी यहां देखने को मिल जाते हैं, इन्हें लोग सारस कहते हैं। ये यहां प्रजनन करते हैं। इन्हे दलदली क्षेत्र में देख सकते हैं। पानी के गहरे गड्ढो, नदियों के खुले किनारे तथा आकाश में कृषकों के खेतों के ऊपर उड़ते हुये ये देखे जा सकते हैं। यहा गिद्ध भी आकाश में विचरण करते हुये देखे जा सकते हैं। किले की नंगी, सीधी ऊची चोटियों में जहां चट्टानें आगे निकली होती हैं, जहां चट्टानो में पोल हैं, खोखलापन है, ये स्थान इन बाजों को आवास प्रदान करते हैं, शरण देते है। सुरक्षा देते है, कोई भी व्यक्ति इन चोटियों को इनके सफेद वीट (मल) से रंगा हुआ देख सकता है।

साथ में ले जाने एवं पास में रखने योग्य चिड़ियों से सम्बन्धित कुछ मार्ग दर्शिकायें है जो चिड़ियों के जानने-समझने एवं उन्हें पहचानने के लिये उपयोगी है, ऐसी पुस्तकों में निम्न पुस्तके द्दष्टव्य हैं :-

i. ए पाकेट गाइड टु दि वर्ड्स आफदि इंडियन सबकान्टीनेन्ट (A Pocket guide to the Birds of the Indian subcontinent] by gremmeti and Inskipp. ग्रिमेटी एवं इन्सकिप,

ii. फील्ड गाइड्स टु दि वर्ड्स आफ इंडिया ले0 क्रिस्काजभिक्जाक
[Field guide to the Birds of india by krysk azmierezak]

iii. Common Birds of India by Salim Ali
कामन वर्ड्स आफ इंडिया ले0 सलीम अली।

iv. Field guide of Indian Birds by Martin Woodcock.

प्रकृति ने असंख्य प्रजातियां उत्पन्न की हैं, इनमें न जाने कितनी प्रजातियां विलुप्त हो गई है और न जाने कितनी विलुप्त होने की कगार पर है, इन सब की अन्तिम सूची अब तक तैयार नही की जा सकी है। इनमें मैना, तोता ऐसे पक्षी है। जो घरो की शोभा बढ़ाने वाली, गाने वाली तथा लोगों की नकल करने वाली है। इनके सम्बन्ध में अनेक रोचक, मनोरंजक कहानियां गावों में कही-सुनी जाती है। स्थानाभाव से यहां पक्षियों के नाम नहीं दिये जा रहे है।
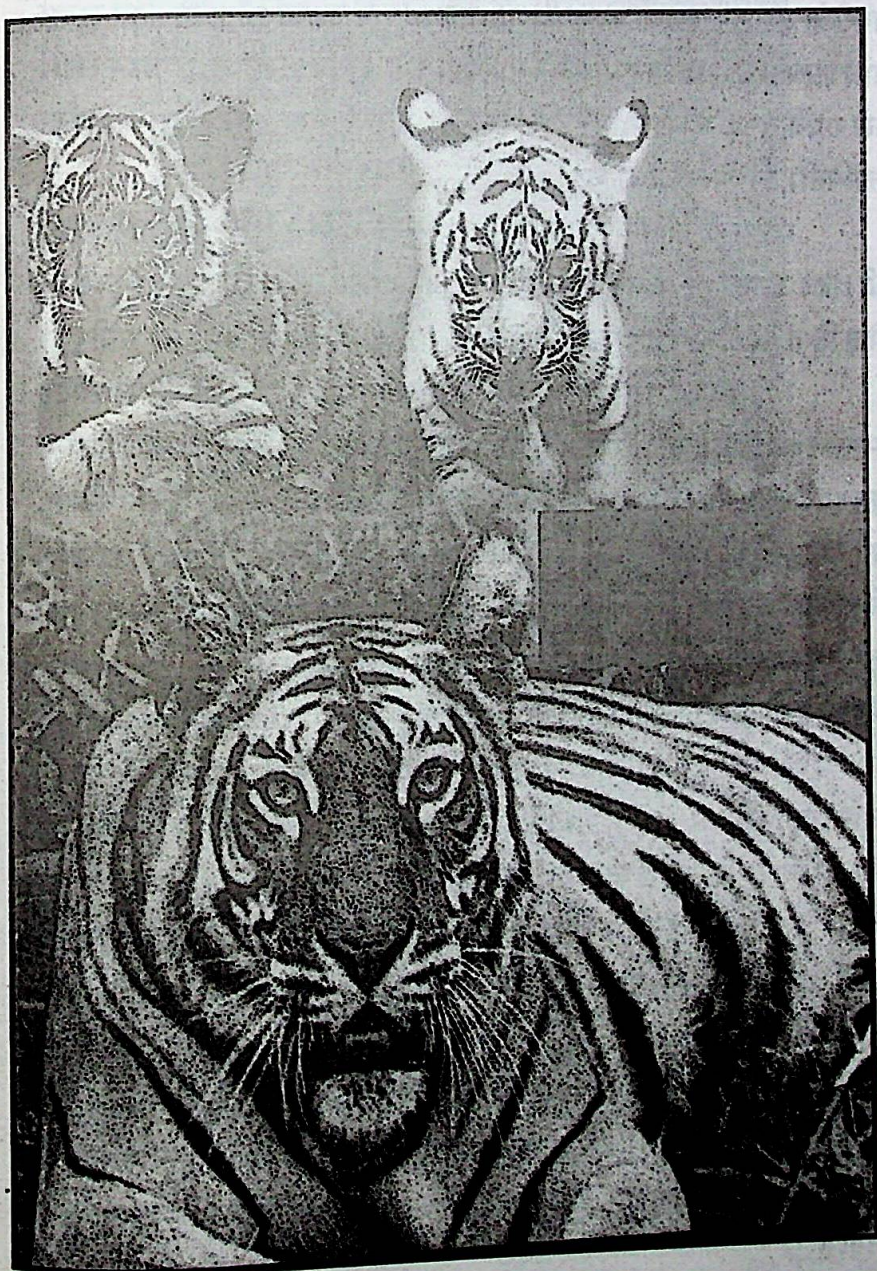
रीवा की शान सफेद शेर 'मोहन'

महाराजा मार्तण्ड सिंह जूदेव ने 27.5.1951 को एक सफेद बाघ शावक बगरी के जंगल में सीधी जिला के मड़वास क्षेत्र मे पकड़ा था। यह बहुत सुन्दर बाघ शावक था। मन को मोह लेने वाला होने के कारण इसका नाम मोहन रखा। इसे गोविन्दगढ़ में नवनिर्मित 'बाघमहल' मे रखा गया। फिर उसके पार्टनर (संगिनी) की व्यवस्था की गई।

मोहन की संगिनी 'बेगम' से दस सन्ताने हुई। उनमें से कोई सफेद नहीं थी। जब उसकी उत्पादन क्षमता का ह्रास हो गया तो उसे अहमदाबाद (गुजरात) भेज दिया गया। वहां वह बच्चों के मनोरंजन व आकर्षण का केन्द्र बन गयी।

मोहन की दूसरी संगिनी 'राधा' जो 'बेगम' की संतति थी, से चौदह सन्ताने हुई जिनमें बारह सफेद व दो भूरे रंग की थीं। जब उसकी बच्चे उत्पन्न करने की क्षमता न रह गयी, तब 'राधा' की पुत्री 'सुकेशी' जो सफेद रंग की थी, को 'मोहन' की पार्टनर बनाया गया। 'सुकेशी' ने पांच बार शावकों को जन्म दिया। कुल दस बच्चे दी। सभी बच्चे सफेद रंग के थे। इस प्रकार 'मोहन' की चौतीस सन्ततियो में से 22 सफेद और बारह भूरे रंग की हुई।

मोहन की सन्ताने नई दिल्ली और कलकत्ते के 'म्यूजियम' की भी शोभा बढ़ायी। इंग्लैण्ड और वाशिंगटन (अमेरिका) भी भेजी गयीं, 'मोहन' के कारण अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन नक्शे में रीवा उभरकर आया और उसकी ख्याति 'सफेद शेर का होमलैण्ड' के रूप में बहुत विस्तारित हुई।

मोहन को देखने के लिये लोग देश के कोने -कोने से आते रहे। विदेशों से आने वाले पर्यटक भी प्रकृति की इस मनोरम कृति 'मोहन' को देखने के लिये गोविन्दगढ़ आते रहे।

पैरालिसिस (Paralysis) के कारण 19 दिसम्बर 1968 को रात 12:30 पर मोहन की बाघमहल (गोविन्दगढ़) में मृत्यु हो गई। उसकी उम्र उन्नीस वर्ष की पूरी हो चुकी थी। राजकीय सम्मान के साथ उसका दाह संस्कार सम्पन्न किया गया।

उसकी मृत्यु के बाद 'बाघमहल' सूना और उदास हो गया। रीवा की शान का अवसान हो गया।
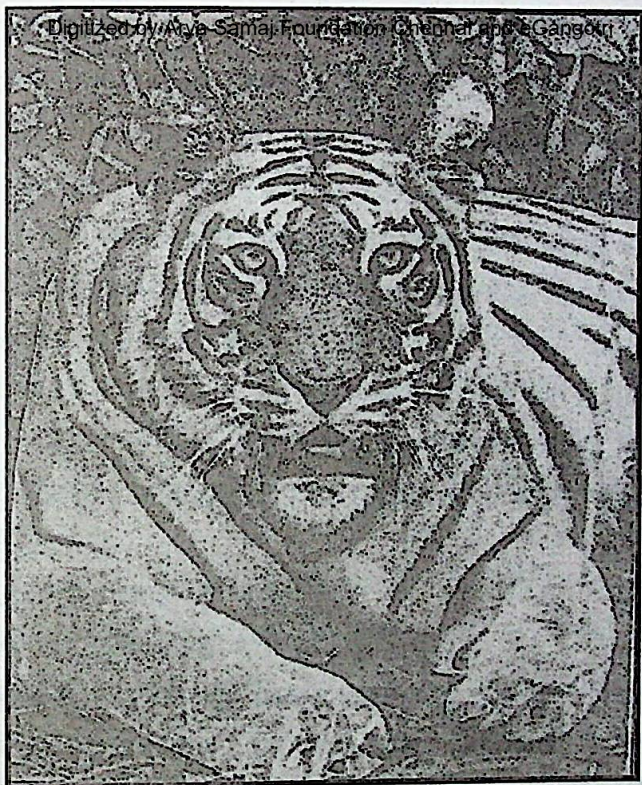
White Tiger Mohan

जैव विविधता

जैव विविधता

जैव का अर्थ जीव तथा जीव सम्बन्धी और विविध का अर्थ अनेक प्रकार का, विविध प्रकार का, बहुरूपी आदि होता है इस तरह जैव विविधता का अर्थ अनेक प्रकार के जीवों से है। लेकिन वर्तमान में जैव विविधता का व्यापक अर्थ है, इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के जीव, वनस्पति, पर्यावरण, पारिस्थितिकी का विस्तृत पारस्परिक सम्बन्ध, तथा एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तृत अध्ययन सम्मिलित है। इसके अन्तर्गत प्रकृति के उन अंगों को भी सम्मिलित कर लिया गया है जिन्हें निर्जीव तथा अचेतन समझा जाता है यथा पहाड़, नदी, नाले, भूमि,आदि। वस्तुत: भारतीय संस्कृति तो अरण्य संस्कृति ही रही है। प्रकृति पूजक रही है अथर्ववेद में तो प्रकृति को वहुत महत्व दिया गया है, अथर्ववेद का ऋषि उद्घोष करता है:-

'माता भूमि: पुत्रोहम् पृथिव्या :
नमो मात्रै पृथिव्यै नमो मात्रै पृथिव्यै '

यानी भूमि माता है, मै उसका पुत्र हूँ माता पृथ्वी को प्रणाम है, माता पृथ्वी को प्रणाम है। वस्तुत: पृथ्वी सभी प्राणियों एवं वनस्पतियों की जननी है, उनका घर है, पोषक है।

हमारी प्राचीन संस्कृति में नदी, पहाड़ों , वृक्षों तथा पशुओं के प्रति भी पूज्य भाव व्यक्त किये गये है। आज भी हमारे गांवों के लोग जब नर्मदा जी अथवा गंगा जी में स्नान करने जाते है, या दूर से इन्हें देखते हैं तो बोलते हैं , 'जय नर्मदे माँ' 'जय गंगे माँ ' कभी-कभी लोग ' गंगा माता की जय' 'नर्मदा मांता की जय' आदि शब्दों से घोष भी लगाते हैं, आज भी हमारी संस्कृति में 'तुलसी' के पौधे को 'माता' मानते है जो गांवो में अनेक घरो में आंगन की शोभा बढ़ाती है। लोग घर के आंगन में तुलसी के पौधे को लगाना अपना धर्म और पुण्य समझते है। सायं तुलसी चौरे में दीपक जलाते हैं, अगरबत्ती सुलगाते है। गाय को माता मानते है उसके प्रति पूज्यभाव रखते हैं। पीपल वृक्ष को ब्रह्म का आवास मानते है। अनेक लोगो का विश्वास है कि पीपल के पत्ते-पत्ते में देवता विराजमान है। 'बरगद' के पेड़ को 'भुइया बाबा' के रूप में देखते और मानते हैं। इस प्रकार आदि काल से अपने अमित और अनुपम अवदानों केकारण वृक्ष हमारे पूर्वज और पूज्य रहे हैं। हम इन्हें विषपायी शंकर भगवान मानते है और इनके रोपण को अत्यन्त पुण्य कार्य समझते हैं। 'देव-परिवार'मे गणेश,शंकर, अत्यन्त पूज्य है। हिन्दुओं में कोई भी -

शुभकार्य गणेश जी की पूजा के बाद ही होने का विधान है। उन्हें विघ्न हर्त्ता माना जाता है इनकी सवारी 'चूहा' है जिसे भूषक भी कहते है। भगवान शंकर अत्यन्त सरल और भोले माने जाते है। सहज ही प्रसन्न हो जाते है। इनकी सवारी वृषभ यानी बैल है। कहने का तात्पर्य यह कि हमारी संस्कृति में ही प्रकृति के प्रति पूज्य और पुनीत भाव है, इन बातो के उल्लेख का अर्थ यह बताना ही है कि भारत में समस्त प्रकृति को मानव का पोषक और जीवनाधार माना गया है, और उसके प्रति श्रद्धा और सम्मान की भावना व्यक्त की गई है। वृक्षारोपण करना तालाब बनवाना कुऑ-बावली बनवाना पुण्य कार्य माने जाते रहे है। समय और परिस्थितियां बदल जाने से लोगो की भावनाओं और विचारो में अन्यान्य कारणों से बदलाव आ गया है। भौतिकता की चकाचौध ने बहुत कुछ उलट-पुलट दिया है। जब जन्म देने और पालन पोषण करने वाले माता-पिता अनादर की स्थिति में होते जा रहे है तब प्रकृति के प्रति पुनीत भाव कहां स्थिर रहेगा ? हमारी संस्कृति के पतन और अपसंस्कृति के उत्थान के कारण ऐसा हो रहा है। आज फैशन और ऊपरी प्रदर्शन का जमाना है। फैशन के नाम पर बदन से वस्त्रों का पतन होता जा रहा है। माता-पिता वृद्धाश्रम की ओर ढकेले जा रहे है। उनके प्रति किसी युग में रही-बसी श्रद्धा-सम्मान की भावना आज तार-तार होती जा रही है। संयुक्त परिवार , जो भारतीय संस्कृति की पहचान थे, सदाचार और शाकाहार जो उसके अवयव थे ; आज सब आंखों से ओझल-होते जा रहे है। भ्रष्टाचार, मांसाहार, एकांकी परिवार, पश्चिमी सभ्यता और आधुनिक परिवेश की देन है। आज सर्वत्र अशान्ति तनाव, बेचैनी, आपाधापी, कलह,जलन,लूट-बेईमानी, चरित्र-पतन दृष्टिगत है। यह हमारी युगो से पली-पोषी पल्लवित परम्पराओं और मूल्यों के घोर पतन के कारण ही है। हमें अच्छी बातो को उत्साह पूर्वक सीखना चाहिये ; उन्हे आचरण में लाना चाहिए। लेकिन यह जानने और समझने की भी जरूरत है कि आखिरकार अच्छी बातें है कौन ? किन्हें हम अच्छी बाते समझे। इसके सम्बन्ध में अन्यत्र चर्चा की जायगी। हम जैव विविधता की बात कर रहे है अत: उस पर पुन: आयें।

जैव विविधता प्रकृति का श्रृंगार है ; मानव के लिये वरदान है। यह परमपिता परमेश्वर की अनोखी झलक प्रस्तुत करता है। यह रचना इतनी विविध, रहस्यमयी और आकर्षक है जो अवर्णनीय है। आज इतना विकास हो जाने के बावजूद हमारी जैव विविधता के सम्बन्ध की जानकारी मात्र पांच प्रतिशत है।

पंचानवे प्रतिशत जानकारी के प्रयास चल रहे है। यह प्रकृति की अनमोल देन है। हमारा पुनीत कर्त्तव्य है कि हम इसकी सुरक्षा करें ; इसे बचायें। इसके संरक्षण के लिये आवश्यक उपाय करें।

प्रकृति के प्रमुख उपादान है- क्षिति,जल,पावक,गगन, समीर। इन्ही तत्वों से सारे चेतन-अचेतन की रचना हुई है। सारे प्राणी कीट- पतंग आदि तथा सारी वनस्पतियों की उत्पत्ति के आधार यही प्राकृतिक तत्व है। इन्ही तत्वों से मानव की भी रचना हुई है। जल तो जीवन का आधार ही है। जहां जल है। वहां जीवन है। कहा जाता है, कि जो पिण्ड में है। शरीर में है वही ब्रह्माण्ड में है। बृहत् संसार में है। व्यापक प्रकृति में है। प्रकृति से भिन्न किसी प्राणी, वनस्पति की कल्पना नही की जा सकती है, प्रकृति के अंक में ही सारे चेतन प्राणी और वनस्पतियां उत्पन्न और विनष्ट होती है।

मानव प्रकृति की श्रेष्ठ रचना है। समस्त चेतन प्राणियों मे मानव सर्वोत्कृष्ट है ; सबसे ऊपर है, गुण क्षमता, प्रतिभा में नारायण का अनुज है ; अमृत पुत्र है ; विराट् सम्भावनाओं से भरा है ; उसके लिये इस ब्रह्माण्ड में कुछ भी अलभ्य नही है। उसका दायित्व है कि वह प्रकृति के हर उपांग की रक्षा करे ; उसे बचाये ; स्वस्थ रखे, क्योंकि उसके स्वस्थ स्वरूप से ही मानव जीवन सुखी और निरोग रह सकता है।

प्रकृति ने पहले जल दिया, फिर जीव और विविध वनस्पतियां दी, तब अन्त में प्राणी (मानव) आया। समस्त चेतन-अचेतन प्राणियों का प्रकृति-धरती, जल, समीर, गगन से अटूट सम्बन्ध है। जब तक प्रकृति के साथ मानव का संतुलन है तब तक मानव का अस्तित्व है। सन्तुलन बिगड़ने पर तो विनाश है, अस्वस्थता है, महाप्रलय है।

धरती हमारी तथा समस्त प्राणी-पदार्थो-वनस्पतियों की जननी है, सूर्य पिता है। सूर्य अपनी किरणों के माध्यम से पृथ्वी को गर्भाधान करता रहता है जिससे विविध प्रकार के जीव जन्तु और वनस्पतियां कालक्रम से उत्पन्न होती और मिटती रहती है। प्रकृति स्वयमेव सृष्टि में तल्लीन रहती है। धरती माता ने सूर्य के माध्यम से आदिकाल से अब तक न जाने कितने प्राणी -पदार्थ उत्पन्न किया, अज्ञात है। आज तक इस सम्बन्ध में जो भी जानकारी उपलब्ध है, वह अधूरी है।

कालक्रम से प्राणियों की उत्पत्ति, उनका विकास और नाश होता रहा है। यह क्रम सृष्टि के प्रारम्भ से अद्यतन चल रहा है। धरती माता जन्म देती है, पोषण करती है और अन्त में उसे अपनी गोद में फिर समेट लेती है। प्राणी-पदार्थों और वनस्पतियों के अस्तित्व का सम्बन्ध पर्यावरण और पारिस्थितिकी से है, इसीलिये पर्यावरणविद् वनो को बचाने और प्रकृति के उपांगो-धरती, जल, पवन, गगन को प्रदूषण से मुक्त रखने पर बहुत जोर देते हैं।

वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ है। यह हमारे देश के लिये गौरव की बात है, कि वेदों की रचना हमारे देश में आज से हजारों वर्ष पूर्व हुई है। अथर्ववेद का 'पृथ्वीसूक्त' पर्यावरण चेतना से भरा पड़ा है। इस सूक्त में पृथ्वी, जल, अग्नि, गगन, आदि से संसार वासियों को सुखी रखने के लिये अनेकानेक मंगल कामनायें की गई है।

आज पर्यावरण प्रदूषण के लिये अनेक कारक उत्तरदायी हैं। उनमें बढ़ती हुई जनसंख्या, वनो का विनाश, शहरीकरण, हरे पेड़ों की अन्धाधुन्ध कटाई, औद्योगीकरण, कल-कारखानो का उत्सर्जन, पृथ्वी के तापमान में वृद्धि, ओजोनपरत का ह्रास, कोलाहल,कत्लखाने आदि प्रमुख है। आज के मानव की सोच बदल गई है। उसे वन विनाश और हरे पेड़ों के विनाश से जो आक्सीजन-प्राणवायु बनाने के कारखाने है, जरा भी संकोच नही होता है। जबकि उसके पूर्वजों का जन्म प्रकृति की गोद में हुआ और उसका विकास भी प्रकृति के सान्निध्य में ही शुरू हुआ। उसने प्रकृति के विविध रूपों यथा पेड़-पौधों, नदी, तालाब , पहाड़, पत्थर और कई प्राणियों को देवी-देवताओं का रूप मानकार उनकी उपासना की। आज से लगभग दस हजार वर्ष पहले कृषि करनी शुरु की। देश में आज लगभग 550 आदिवासी समाज और 227 मानव जाति समूह है जो वनवासी है। जंगल इनके घर है और ये इन्ही पर निर्भर है, इन्ही आदिवासी समाजों और मानव जाति समूहों ने अधिकांश वनो को देव वन मानकर सुरक्षित रखा है। लोक मान्यता के अनुसार इनमें से अधिकांश वनों से केवल सूखी टहनियां और पत्तियां ही बटोरी जा सकती है। उनमें न पेड़-पौधे काटे जा सकते है न वन्य प्राणियों को मारा जा सकता है। उन वनो को देववन कहते हैं। इन देववनों के अपने स्थानीय वन देवता या वनदेवी है।

विभिन्न राज्यों में देव वनो के अलग-अलग स्थानीय नाम है। मध्यप्रदेश में इन्हें सरना, देव था जा- शेरथान, केरल में काबू असम में थान कहते हैं।

देववनो के कारण दुर्लभ जड़ी-बूटियां आज भी सुरक्षित है। सिक्किम में बौद्धों के लिये वन बेहद पवित्र है। पवित्र वनो को काटना या उनमें किसी तरह की तोड़-फोड़ करना मना है।

राजस्थान के विश्नोई समाज ने पेड़-पौधों और वन्य जीवो के संरक्षण में भारी योगदान किया है। उनके गांव मे खेजड़ी के खूब हरे-भरे पेड़ है और कालेमृग, चिंकारा, मोर आदि वन्य प्राणी उनके घरो में भी बेहिंचक चले आते है- 'हित-अनहित पशु- पक्षिहिं जानत' आम धारणा है। पशु-पक्षी भी इतना ज्ञान रखते है कि उन्हें कहां खतरा है, कहां नही है। विश्नोई प्रकृति पूजक है। वे न पेड़ काटते है न जीव हिंसा करते हैं। उनके यहां एक कहावत कही जाती है- ' सर सांठे रुके रहे तो भी सस्तो जान' यानी सिर देकर भी पेड़ बच गया तो समझो फिर भी सस्ता है।'

* * *

मानव और धरती के बीच माता-पुत्र का सम्बन्ध आदिकाल से उन्नीसवी शताब्दी तक ठीक चला। अनेक वनवासी समूहो में यह पुनीत रिश्ता अब भी चल रहा है लेकिन नई सभ्यता की रोशनी से चकाचौध आधुनिक मानव-समूह प्रकृति के प्रति क्रूर हो गया है। उन्नीसवी शताब्दी के बीतते-बीतते, विज्ञान की खोजो और जनसंख्या के विस्फोट के कारण औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया में बड़ी तेजी आई, इससे प्रकृति और मानव के बीच सन्तुलन बिगड़ने लगा। वनो का तेजी से विनाश प्रारम्भ अुआ। अनगिनत हरे वृक्ष काटकर विनष्ट कर दिये गये। वहां नयी आबादी बस गई। जहां किसी समय पूरी धरती वनाच्छादित थी, जनसंख्या की वृद्धि और कृषि के कारण वनो का तेजी से उच्छेदन प्रारम्भ हुआ। तेतीस प्रतिशत भूभाग में वन होना मानव और वन्यप्राणियों के बीच सन्तुलन की दृष्टि से ठीक समझा गया, लेकिन तेजी से बढ़ती जनसंख्या और बढ़ते उद्योगों के कारण भूमि की मांग वनो की सफाई से पूरी होने लगी। परिणामस्वरूप वनो का क्षेत्र क्रमशः घटता गया और घटते-घटते आदर्श स्थिति का मुश्किल से एक तिहाई यानी ग्यारह प्रतिशत ही रह गया जो समस्त वन्य प्राणियों और मनुष्यों के लिये सन्तुलन की दृष्टि से आदर्श स्थिति नही रही।

औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण प्रतिवर्ष लगभग चार लाख हेक्टेयर भूमि से हम हाथ धोते जा रहे है। एक अनुमान के अनुसार देश की -

लगभग 95 लाख हेक्टेयर भूमि जलभराव और लवणीयता की बीमारी से बर्बाद हो चुकी है। मिट्टी के उपजाऊपन का दारोमदार उसकी ऊपरी परत पर होता है। जंगल और बगीचों के विनाश से ऊपरी परत का क्षरण तेजी से होता है। हवा और पानी से होने वाले क्षरण के कारण प्रति वर्ष लगभग 5.3 लाख टन उपजाऊ मिट्टी उखड़कर सागर और जलाशयों में समा रही है। इससे भूमि के लगभग 80लाख टन पोषक तत्व सदा के लिये नष्ट हो जाते है। वनो का क्षेत्र निरन्तर घटता जा रहा है, वृक्षो की संख्या कम होती जा रही है। ईधन के रूप में हर वर्ष लगभग चौबीस करोड़ घनमीटर लकड़ी का उपयोग किया जाता है, जबकि केवल पांच करोड़ घनमीटर लकड़ी का ही बोझ वास्तव में उठाया जा सकता है। हमारे देश में कार्बनडाय आक्साइड गैस का उत्सर्जन बहुत बढ़ गया है। इससे तापमान की वृद्धि में और सहयोग मिल रहा है। इससे भारत के कुल 5220 ग्लेशियरो को खतरा उत्पन्न हो गया है। सम्भावना है कि गंगा नदी का उद्गम स्त्रोत गंगोत्री ग्लेशियर आगामी पचास वर्षों में सूख जायगा जो कि गंगा नदी को भी सुखा देगा। इससे हमारी अर्थ व्यवस्था पर बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ेगा क्योंकि जल ही विकास की आधारशिला है, अनेक स्थानों मे भूगर्भ जल भी लगभग समाप्त प्राय है। नदियों की स्थिति ठीक नही है। यमुना को गन्दा पानी का नाला कहा जा रहा है। गंगा भी बहुत प्रदूषित हो गयी है। जल जनित रोगों से देश की नब्बे प्रतिशत आबादी चपेट में है जिसका प्रभाव व्यक्ति की कार्य क्षमता और अन्तत: देश के विकास पर पड़ रहा है।

जनसंख्या के विस्फोट अैर औद्योगीकरण के कारण वनों और हरे पेड़ों की अन्धाधुन्ध कटाई हुई है जिससे पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ गया है। वन विनाश के परिणाम हमारे सामने अवर्षा, अल्पवर्षा, अतिवर्षा एवं असमय वर्षा के रूप में आने लगे है। आकाशीय बिजली गिरने की घटनायें बढ़ गई है जिससे जनहानि हो रही है।

नगरीकरण और कल कारखानों के कारण जो प्रदूषण होता है उसे हम निम्न प्रकार से विभाजित कर सकते है- भू-प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, शोर प्रदूषण, रासायनिक प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण आदि आदि।

रेडियोधर्मी प्रदूषण संसार के लिये बहुत ही घातक है। इनमें यूरेनियम, रेडियम,थोरियम, पोटेशियम, कार्बन के मैगनीज आते है।

आटोमोबाइल्स के बढ़ते उपयोग के कारण हमारे देश में डीजल और -

पेट्रोल से उत्सर्जित प्रदूषण से अनेक नगरो में सांस लेना कठिन है अब दिल्ली, कलकत्ता, मुम्बई की सड़कों में चलने वाले मुंह में मुसका लगाने लगे है ताकि उन्हें साफ हवा मिल सके, "विनाश का मार्ग तलाशते हम" शीर्षक से समय (दैनिक) ने दिनांक 6.8.07 को लिखा है- " एवरेस्ट हिमालय के सत्तर बड़े ग्लेशियरों में शामिल है जिनमें मीठे जल की विशाल पूंजी जमा है, ग्लोबल वार्मिङ्ग के कारण आज दुनिया भर के ग्लेशियरो में वर्फ तेजी से पिघल रही है, नतीजन वे सिकुड़कर पीछे खिसकते जा रहे है। इसी वजह से एवरेस्ट ग्लेशियर भी लगभग पांच किलोमीटर सिकुड़ गया है। एवरेस्ट के पास ही स्थित नैपाल का सबसे बड़ा दूध कोशी बेसिन ग्लेशियर भी साठ मीटर प्रतिवर्ष की दर से पिघलकर पीछे खिसक रहा है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण द्वारा हाल ही मे जारी रिपोर्ट 'आउटलुक फार ग्लेशियर एण्डस्नो' मे बताया गया है कि हिमालय क्षेत्र की लगभग नौ हजार ग्लेशियर-झीलो और पन्द्रह हजार ग्लेशियरो में से आधे सन् 2050 तक और ज्यादातर वर्ष 2100 तक समाप्त हो जायेगे। ग्लोबल वार्मिङ्ग के कारण हिमालयी ग्लेशियर 10 से 20 मीटर प्रतिवर्ष की दर से सिकुड़ रहे हैं ....पर्यावरण से खिलवाड़ क्या मानव का विनाश मार्ग तलाशना नही है ?

" चेत नही तो चिड़िया चुग जाएगी खेत" शीर्षक से स्वतंत्रमत (दैनिक) ने 8.8.07 को लिखा है- "भूमिगत जल का दोहन विस्फोटक मसला बनता जा रहा है। बेमतलब पानी के कारण पर्यावरण को भी नुकसान हो रहा है। कैलिफोर्निया स्थित पैसिफिक इन्स्टीट्यूट के अनुसार 2004 मे अमेरिका में 26 अरब लीटर पानी की पैकिंग के लिये प्लास्टिक की बोतले बनाने के लिये दो करोड़ वैरेल तेल का इस्तेमाल किया गया। प्लास्टिक से बनी बोतले कूड़े के ढेर में पहुंचती है तो भूमिगत जल को प्रदूषित करने के साथ-साथ ग्लोबल वार्मिग की भी सवव बनती है........ "

प्रदूषण के कारण पृथ्वी की ओजोन परत का भी क्षरण हो रहा है। पृथ्वी की सतह से 10 से 60 किलोमीटर ऊपर वातावरण के निचले स्ट्रेटोस्फेयर में ओजोन गैस का आवरण है जो सूर्य की पराबैगनी किरणो को पृथ्वी पर पहुंचने से पूर्व अवशोषित कर लेती है। पराबैगनी से होनेवाला विकिरण साधारण एक कोशीय जीवो जेसे शैवाल, वैक्टीरिया, प्रोटोजीवा तथा उच्च वृक्षों एवं पशुओं -

की सरफेस कोशिकाओं के लिये घातक है। यह कोशिकाओ के आनुवांशिक पदार्थ (DNA) को भी नष्ट कर देता है तथा मानव त्वचा मे सनवर्न के लिये उत्तरदायी माना जाता है। इस विकिरण से त्वचा के कैन्सर हो जाने का भी पता चला है। इस तरह ओजोन परत, मानव, पशु-पक्षियो तथा वनस्पतियों की पराबैगनी किरणो से होने वाले विकिरण प्रभावो से रक्षा करती है जो प्रदूषण के कारण क्षत-विक्षत होता जा रहा है। उसमे कुछ सूराख भी हो गये है, यह खतरे की घंटी है।

कल-कारखानो का उत्सर्जित कचड़ा रासायनिक रंग, फेंकी गई पोलिथिन, जलकुम्भी आदि से प्रदूषित जल मछली, मेढ़क एवं अन्य जलीय प्राणियों की मृत्यु का कारण है। यदि औद्योगिकीकरण और वाहनो के उत्सर्जन की दर यो ही रही तो पूरे देश में तेजाबी बरसात होगी जो जलीय जीवो को बेहद प्रभावित करेगी। विभिन्न उद्योगो से सल्फर डाय आक्साइड और नाइट्रोजन आक्साइड की भारी मात्रा निकल रही है जो जलीय स्त्रोतों के लिये खतरा है और जलीय जीवो के लिये मौत। इस पर तत्काल नियन्त्रण के प्रयास किये जाने चाहिये।

प्रदूषण से बचना और पर्यावरण बचाना हर नागरिक का पुनीत कर्त्तव्य है। यदि मानव जाति को बचाना है तो पर्यावरण को स्वस्थ रखना पड़ेगा। इसमे जन-जन की भागीदारी आवश्यक है। केवल शासकीय मशीनरी से यह सम्भव नही है। पर्यावरण और प्राणी एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े है। पर्यावरण से पृथक जीव की कल्पना असम्भव है।

अनेक कारणों से उत्पन्न प्रदूषण और वनो के निरन्तर हो रहे विनाश से वन्य प्राणियों पर संकट बढ़ गया है। बाघ तेन्दुआ जेसे प्राणी पारिस्थितिकीय सन्तुलन के लिये आवश्यक है। इनके विनाश से सम्पूर्ण प्रकृति प्रभावित होगी। लेकिन आज इनका अस्तित्व खतरे में है। बाघ को बचाने के लिये शासन ने बाघ परियोजनायें लागू की है। इससे उनके संरक्षण को बल मिला है। तिस पर भी उनकी संख्या में अपेक्षित वृद्धि नही हो पा रही है। अनेक वन्य प्राणी है जो ऐसी ही स्थिति में है। नर हाथी, भालू, गैड़ा, गोर, कस्तूरी मृग जैसे कई प्राणियों का हाल अच्छा नही है। अनेक प्रजातियों के पक्षी यथा सारस, मैना आदि अपने अस्तित्व के लिये जूझ रहे हैं। आज से दो सौ वर्ष पूर्व अस्तित्व में रहे कितने प्राणी, पक्षी, वनस्पतियां अपना अस्तित्व खो चुकी है, हमें ठीक-ठीक ज्ञात नही है। कितने विलुप्त होने के कगार पर है। इसके सम्बन्ध में भी हम असावधान है जबकि -

यह धरती माता सभी का आश्रय स्थल है। सब एक दूसरे पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष

रूप से निर्भर है। प्राणी-वनस्पतियां सब पर्यावरण से सम्बद्ध है क्योंकि पर्यावरण की रचना प्रकृति के उपांग-वायु जल, मृदा, पावक, पादप तथा प्राणी मिलकर करते है, यदि कोई कड़ी गड़बड़ाई,तो, उसका प्रभाव दूसरे पर भी पड़ता है। प्रकृति का एक चक्र है। चक्र टूटने पर असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सन्तुलन बने रहने पर ही सब की सुरक्षा है। अत: बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण आवश्यक है क्योंकि हरे वृक्ष कार्बन डाय आक्साइड को भोजन के रूप में लेते है जो प्राणियों के लिये विष के समान है और आक्सीजन का उत्सर्जन करते है जो प्राणवायु है जीवन है। वृक्षारोपण से अनेक लाभ है। वृक्षारोपण पुण्य कार्य है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को इसे धर्म-कार्य समझकर करना चाहिए, और जीवन में कम से कम दस वृक्षों को रोपण कर उन्हें पूर्णत: जवान बनाना चाहिये।

हर नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह पोलिथिन का उपयोग बन्द करे। बान्धवगढ़ के मुख्यालय ताला में राजेश सिंह राणा ताला सरपंच (2005-2010) के अथक प्रयास से ताला पंचायत क्षेत्र मे पोलिथिन का प्रयोग लगभग बन्द हो गया है। ऐसे ही कर्मठ, उत्साही, जागरुक लोगों के सक्रिय अभियान से पोलिथिन के इधर-उधर फेंकने पर प्रभावी प्रतिबन्ध लग सकता है। आवश्यकता है। हर गांव नगरमुहल्ले में ऐसे उत्साही पर्यावरण संरक्षक समाज के शुभचिन्तक राजेशों की जो ढूढ़े-ढूढ़े नही मिल रहे हैं।

आज पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति जागरुकता की बहुत आवश्यकता है अन्यथा लोग नदी, नालो, तालाबों, झरनो के आस-पास पोलिथिन फेंकते रहेंगे ; गन्दगी फैलाते रहेंगे। सार्वजनिक स्थानो की साफ-सफाई बनाये रखने में नागरिकों के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है नदी नालो ,तालाबों के आसपास सफाई आवश्यक है । ताकि जल प्रदूषित होने से बचा रहे। अस्पतालो के आस-पास गन्दगी के ढेर दिखाई पड़ते है। शीशी, बोतलें, पट्टियां तथा अवशिष्ट इधर-उधर न फेंके जायें। उनका समुचित प्रबन्धन किया जाय। हमें जल जमीन जंगल और वायु को स्वच्छ और स्वस्थ रखने का ईमानदारी से प्रयास करना चाहिये। यह हमारा कर्त्तव्य-कर्म है ; धर्म है।

हम आज धरती और आकाश का वक्षस्थल फाड़ रहे हैं, उसके अमूल्य भण्डार का दुरुपयोग कर रहे हैं। ईंट, पत्थर, लोहे, गिट्टी के जंगल धरती के सीने -

को चीरकर खड़े करते जा रहे है। पेड़ो को काटते जा रहे है। प्रकृति के प्रति क्रूर होते जा रहे है। उसका परिणाम ऋतुओं के चक्र- परिवर्तन से देख रहे है। ओजोन परत क्षत-विक्षत हो रहा है, तापमान बढ़ रहा है वायु में जहर घुल रहा है, यह सब महाविनाश की पृष्ठभूमि निर्मित कर रहे है। अत: मानव को सही अर्थो में धरती पुत्र 'माता भूमि: पुत्रोहम् पृथिव्या: बनना चाहिए। धरती माता की सुरक्षा के लिये उसके सभी अवयवों- जल, मृदा, वायु, पादप आदि को स्वच्छ एवं स्वस्थ रखने का प्रयास करना हमारा कर्त्तव्य है। हम धरती मॉ को प्रदूषण से बचाने और स्वस्थ रखने के लिये अधिक से अधिक वृक्षारोपण करें। विकास के लिये उद्योग कल-कारखाने आवश्यक है, अत: उनके बीच ऐसा ताल मेल हो कि कल-कारखाने भी चले, प्रदूषण भी न हो। आटोमोबाइल्स में ऐसा ईधन प्रयुक्त हो , ऐसी व्यवस्था हो कि वायु में जहर न घुले। हर क्षेत्र में हो रहे प्रदूषण को नियंत्रित किया जाय। मानवी प्रतिभा के सदुपयोग से यह सम्भव है, आज नही तो कल यह सम्भव हो जायेगा। ऐसा करना नितान्त आवश्यक है। यह समय की मांग है।

जनसंख्या संसाधनो के अनुपात में हो। वनो को एक निश्चित अनुपात में बनाये रखा जाय। सभी वन्य जीवो के संरक्षण हेतु समुचित प्राकृतिक वातावरण , पर्यावरण एवं आवासीय सुविधा हो तभी प्रकृति की अनमोल देन जैव विविधता बनी रह सकेगी।

जैव विविधता का क्षेत्र बहुत विशाल है। इस क्षेत्र में बहुत अनुसन्धान की आवश्यकता है । इतनी प्रगति हो जाने के बाद भी हम हजारो प्राणियों,पक्षियों, कीट-पतंगो के जीवन चक्र आदि से अनभिज्ञ है। हर प्रजाति का अपना अलग संसार है उनके सम्बन्ध में हमारी जानकारी अकल्पनीय रूप से अत्यल्प है, नगण्य है।

जैव विविधता की दृष्टि से बान्धवगढ राष्ट्रीय पार्क अपेक्षतया समृद्ध है, दुर्लभ जड़ी-बूटियों से सम्पन्न है। किन्तु हर क्षेत्र में विस्तृत खोज और अनुसन्धान की आवश्यकता है। यह कार्य समर्पित भाव से लगे प्रतिभा सम्पन्न जीव वैज्ञानिक, वनस्पति शास्त्री और पर्यावरणविद् कर सकते हैं, उन्हें प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है।

वन्य प्राणी-पर्यावरण एवं मानव

प्रर्यावरण ही प्राणियों की उत्पत्ति का कारण रहा है। इसमें महत्वपूर्ण योगदान सूरज का रहा है। सूर्य का प्रकाश धरा के प्राणी-वनस्पति के उद्भव, विकास एवं पर्यवसन का मूलभूत कारण रहा है। हमारे ऋषि मुनियों ने सूर्य को देवता,जीवनदाता की संज्ञा दी है। सूर्य पर ऋग्वेद् में अनेक मंत्र है। सूर्य अपनी किरणो के माध्यम से धरा को गर्भादान करता रहता है जिससे विविध प्रकार के प्राणी और वनस्पतियां इस धरा में उद्भूत होती है। इसमें पर्यावरण का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। पर्यावरण के अन्तर्गत मृदा, जल, पवन , आकश तथा पृथ्वी को आच्छादित करने वाला परिमण्डल है जो अनेक गैसों और ओजोन से संयुक्त है। सूर्य के चारो ओर घूमने वाले ग्रहों में एकमात्र पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है जिसमें प्राणी और पदार्थ उद्भूत हुये और आज लाखो वर्ष बीत जाने के बाद भी विकसित अवस्था मे विद्यमान हैं।

पर्यावरण में जब अचानक परिवर्तन होता है तो अनेक प्राणियों का जीवन खतरे में पड़ जाता है , अनेक प्राणी अपना अस्तित्व खो देते हैं और कुछ नये जीव अस्तित्व में आ जाते है। यह सामान्य व्यक्ति के अनुभव की बात है। जब तीव्र गर्मी के बाद बरसात का आगमन होता है, तवा के समान तप रही पृथ्वी पर पानी की बौछारें पड़नी शुरू होती है, तो मच्छर, मेढक, और न जाने कितने सूक्ष्म प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं,वे हरकत में आ जाते हैं। यदि वर्षा न हो , तो अनेक जीव जो बरसात में अपने आप उत्पन्न हो जाते है, वे दृष्टिगत न हों।

पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है। परि +आवरण 'परि' शब्द का अर्थ 'परत', 'पृथ्वी', 'पीठ' तथा चारो तरफ का घेरा होता है। पर्यावरण का अर्थ 'पृथ्वी का आवरण' 'पृथ्वी का ढक्कन' तथा 'पृथ्वी को ढकने वाली वस्तुयें' होता है। पृथ्वी को आच्छादित करने वाली वस्तुयें पानी, वायु, ऊपरी मृदा, आकाश एवं अनेक प्रकार की सूक्ष्म गैसें है। मोटे तौर पर पर्यावरण का अर्थ वे समस्त उपादान एवं प्राकृतिक तत्व है जो पृथ्वी को आच्छादित किये हुये हैं , यानी मृदा, वायु, जल, आकाश, वनस्पतियां- पेड़ पौधे, घासें आदि।

इन समस्त प्राकृतिक वनस्पतियों का प्राणियों के साथ अभिन्न सम्बन्ध है, इनकी स्थिति के अनुसार ही प्राणियों की उत्पत्ति, उनका अस्तित्व एवं जीवन होता है। पृथ्वी के उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव में वे वनस्पतियां और प्राणी नही दिखते

हैं जो विषुवत रेखीय प्रदेशों में रहते है। विषुवत रेखीय प्रदेशो में रहने वाले प्राणियों की वह जीवनशैली नही होती है जो पृथ्वी के 60-70 अक्षांसीय प्रदेश के प्राणियों की होती है,

धरती पर पाये जाने वाले सभी प्राणियों का पर्यावरण से गहरा अटूट सम्बन्ध है। समस्त प्राणी एवं अदृश्य कीट वाइरस आदि पर्यावरण पर आधारित हैं। उसमें जैसे जैसे परिवर्तन होता हे, प्राणियां के जीवन पर भी तदनुकूल प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण की भिन्नता से जो प्राणी अनुकूलता नहीं ग्रहण कर पाते है, वे मिट जाते है। यही स्थिति वनस्पतियों की भी है। वायु जल,मृदा की स्थिति में परिवर्तन हो जाने से वनस्पति जगत में गहरा प्रभाव पड़ता है। अत: पर्यावरण की शुद्धता , स्वच्छता एवं स्वस्थ स्थिति में होना बहुत आवश्यक है। यदि पर्यावरण का कोई घटक अस्वच्छ , अस्वस्थ हुआ तो उसका दुष्प्रभाव उससे सम्बन्धित प्राणियों पर पड़ता है। जल प्रदूषित हुआ तो उससे अनेक जलजनित रोग अवश्यम्भावी हैं। जल में रहने वाले प्राणी मछली, मेढक, कछुवा आदि के लिये खतरा उत्पन्न हो जाता है। पानी मे रासायनिक रंग मिला या डाल देने से या ऐसी वस्तुये जिनमे रासायनिक रंग का प्रयोग किया गया है पानी में फेंक देने से या अन्य किसी प्रकार से जल को प्रदूषित कर दिये जाने से समस्त प्राणी उससे प्रभावित होते है। जल ही जीवन है, यदि जल प्रदूषित है तो जीवन स्वस्थ कैसे रह सकता है ?

मृदा में पोलीथीन, कीटनाशक दवाओं के डालने या फेंके जाने से मृदा की संरचना पर प्रभाव पड़ता है, उसमें रहने वसने वाले, उससे जीवन ग्रहण करने वाले अनेक प्राणी प्रभावित होते है। धरती पर अनेक प्रकार से फेंकी जाने वाली गन्दगी धरती तथा वायु को प्रदूषित तो करती ही है, अनेक प्रकार की बीमारियों को भी जन्म देती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से सार्वजनिक स्थानों की स्वच्छता और साफ-सफाई बहुत आवश्यक है। लेकिन पोलीथीन का बढ़ता प्रभाव यत्र-तत्र-सर्वत्र गन्दगी के प्रसार में भारी कारण बनता जा रहा है। अस्पतालों के पीछे, अगल-बगल,रेलवे लाइनों पर , शहरो के कूड़ादानो, नालियों में, गाँवो, कस्बों में इधर-उधर पड़ी या उड़ती हुई पन्नियां , गन्दगी तथा अस्वस्थता फैलाने के कारण बनी हुई हैं। ये पानी के बहाव को बुरी तरह प्रभावित करती है। नाली-नालों के बहाव को रोक देती है ; बाढ़ आने का कारण बनती है। नदी, नालो, तालाबो, तीर्थस्थानों तथा समुद्र के किनारे बड़ी मात्रा में इधर-उधर फेकी गई पन्नियाँ, -

पोलीथीन से विभिन्न प्रकार के निर्मित थैला-थैलियाँ जबर्दस्त प्रदूषण का कारण बनी हुई हैं। लोग इन थैला-थैलियों में बाजार से खाद्य-सामग्री लाते हैं, फिर इन्हें यत्र-तंत्र फेंक देते है। या अवशिष्ट खाद्य-पदार्थ इन्हीं में रखकर बाहर सड़क या रास्तों के किनारे फेंक देते हैं, उन थैला -थैलियों में रखी वस्तुओ तथा उनमें लिपटी वस्तुयें खाने की लालच में जो प्राणी उन्हें खा लेते है। वे चाहे पालतू हो या वन्य प्राणी हो देर-सबेर मौत की गोद में चले जाते है। पोलीथीन जहर है। उसके बढ़ते प्रयोग से प्रदूषण भी बढ़ता जा रहा है जो सभी प्राणियों के लिये हानिकारक है। पर्यावरण के लिये घातक है।

वायु प्रदूषण अनेकानेक कारणो से बहुत बढ़ गया है। बीसवीं शताब्दी में जितने आटोमोबाइल्स सड़कों पर थे, इक्कीसवीं शताब्दी में उनकी संख्या में कई गुना वृद्धि हो गई है जिनसे लाखों बैरेल डीजल, पिट्रोल का उत्सर्जन जहरीली गैसों के रूप में वायु में घुलता रहता है। कुछ लोग गांवों में ट्रैक्टर तथा सिंचाई की मशीनों में किरोसीन का उपयोग करके वायु को प्रदूषित कर रहे है।

वायु-प्रदूषण के प्रमुख कारण है डीजल-पिट्रौल का बढ़ता उत्सर्जन; वनो तथा हरे वृक्षो का विनाश एवं जनसंख्या की वृद्धि। जनसंख्या की वृद्धि के कारण लोगों को रहने के लिये मकान, खाने के लिये भोजन, ईंधन के लिये लकड़ी, कृषि अथवा कल-कारखाने के लिये भूमि आदि की बढ़ती आवश्यकताओं ने हरे-भरे वृक्षों एवं वनों का अन्धाधुन्ध विनाश किया है। लोखों हेक्टेयर वनभूमि कृषि तथा रहाइश के लिये ले ली गई है। हरे वृक्षों के विनाश से अनेक दुष्प्रभाव पड़े हैं जो दिनों दिन गहराते जा रहे है। भूगर्भ जल का स्तर नीचे तो जा ही रहा है, कहीं-कहीं तो जल ही नही रह गया है। वनों से बादल बनते है, बादलो से वर्षा होती है, वन नही तो बादल नही ; बादल नहीं तो वर्षा नहीं। वनक्षेत्र एवं हरे-भरे विशाल वृक्ष बादलो को आकर्षित करते है, उन्हें नीचे की ओर खींचते है, वे (वादल) बरसते है। वर्षा का पानी धरती के अन्दर जाता है। बहने वाली नदियों, नालो, तालाबो, झीलों आदि का जल भी धरती के अन्दर प्रविष्ट होता रहता है, यही छना हुआ जल जो धरती की कोख में जमा होता जाता है, भूगर्भीय जल कहलाता है जिसमें धरती माॅ के अनेक जीवनोपयोगी खनिज मिले होते हैं जिससे जल स्वस्थ कर बनता है, पीने योग्य होता है। कुआं खोदकर या बोर करके उस जल को उपयोग में लाने हेतु ऊपर निकालते है। लेकिन वनो के विनाश से वर्षा भी बुरी तरह -

प्रभावित हुई है। पानी भी कम बरसता है, जो बरसता है वह वृक्षों के माध्यम से पृथ्वी की कोख में भी नही जा पाता है। यद्यपि सरकारें आकाशीय जल को संरक्षित करने के लिये अनेक योजनायें कार्यान्वित की हैं, लेकिन प्राणवायु निर्माण के कारखाने है हरे वृक्ष। बड़ी संख्या में हरे वृक्षों का रोपण नदी-नालो के कूलो, खेतो की मेड़ों घर के आस-पास तथा खाली पड़ी भूमि में करना धर्म, पुनीत कर्त्तव्य समझा जाना चाहिये। मानसिकता में परिवर्तन बहुत आवश्यक है।

हर घर के आंगन में तुलसी का पौधा हो। घरों की छतो मे खाली पड़े डिब्बों या मिट्टी के वर्तनो-गमलो में मिट्टी भरकर छोटे-छोटे पौधे-टमाटर मिर्च, तुलसी आदि के लगाये जाने से हरियाली तो रहेगी ही, कुछ खाने को भी मिल जायेगा। पर्यावरण के लिये भी अत्यल्प योगदान होगा।

आज गगन चुम्बी मकान आकाश और धरती मॉ के वक्षस्थल को चीर फाड़कर खड़े किये जा रहे है। बढ़ती जनसंख्या के लिये मकान कहा से आयेंगे ? भूमि तो सीमित है। विकल्प के रूप में मकान के ऊपर मकान ही बचता है, इससे ईट, पत्थर, गिट्टी लोहे के जंगल तो बढ़ रहे है। प्राणवायुदाता वृक्ष घट रहे है। इन दोनो के बीच सन्तुलन आवश्यक है। सबसे अधिक आवश्यकता जनसंख्या वृद्धि में कारगर रोक लगाना है। यह काम जागरुकता एवं कानूनी प्रतिबन्ध लगाये जाने से सम्भव है। लोकतान्त्रिक देशो में कानूनी प्रतिबन्ध भी कठिन है एकमेव उपाय शिक्षा एवं जागरूकता ही है। इसी की वृद्धि एवं प्रसार से जनसंख्या वृद्धि में प्रतिबन्ध तथा रोक सम्भव है। जनसंख्या की असंतुलित वृद्धि का भार पृथ्वी वहन नही कर सकेगी क्योंकि जनसंख्या विस्फोट से अनेक समस्यायें उत्पन्न होती है यथा अधिक मकान, कृषि के लिये अधिक भूमि, अधिक स्कूल, अधिक औषधालय,आर्धक खेल के मैदान, सड़के, वाहन जीवनोपयोगी वस्तुये यथा कपड़ा, लिखने पढ़ने के लिये अधिक पुस्तके, कापियां साबुन तेल, दवाइयां और इनका निर्माण करने वाले कल-कारखाने , फैक्टरियां आदि आदि। एक लम्बा चक्र है जिसको पूर्ण करने में सम्भवत: यह पृथ्वी (ग्रह) सक्षम नही हो सकेगी।

वनों के विनाश और बढ़ते प्रदूषण से पर्यावरण गड़बड़ाता जा रहा है। इससे मौसमो में प्रतिकूल प्रभाव स्पष्टत: लक्षित है। पृथ्वी का तापमान, क्रमश: बढ़ रहा है, असमय वर्षा, अल्प वर्षा, अत्यधिक वर्षा, अवर्षा, आकाशीय विजली का भूपात, पृथ्वी की ऊपरी उपजाऊपरत का क्षरण आदि अनेकानेक दुष्प्रभाव सबके सामने है। पृथ्वी के तापमान बढ़ने से महाप्रलय की पृष्ठभूमि रच रही है।

नदियाँ अपना अस्तित्व खोती जा रही है, उनके जल की गुणवत्ता में गिरावट आती जा रही है, इन सबके लिये पर्यावरण का गड़बड़ाना ही उत्तरदायी[1] है।

---

[1] यू.एन.मिलेनियम इको सिस्टम एससमेन्ट (U.NMillennium ecosystem Assessment) की परियोजना रिपोर्ट के अनुसार 2050 तक जलवायु परिवर्तन एवं पक्षियों के आवास स्थल उजड़ने से 400 से 900 प्रजातियों का अस्तित्व खतरे में होने की आशंका है और इककीसवीं शताब्दी के अन्त तक यह सूची लगभग दुगुनी हो जायगी। वर्तमान में पक्षियों की जिन 1186 प्रजातियों के लुप्त होने का खतरा है, उनमें से 321 प्रजातियां अत्यन्त जोखिम की स्थिति में है इसी तरह 680 असुरक्षित अवस्था में है, नई दुनिया (दैनिक) 17.3.08

' टाइगर रिजर्व फारेस्ट (Tiger Reserve Forest) के गठन के बाद यह तय किया गया था कि सभी राष्ट्रीय उद्यानो में बाघो के लिये एक अलग से वफर जोन (Buffer Zone) तैयार किया जायगा ताकि बाघों को सुरक्षित किया जा सके, कमोवेश इस निर्णय पर देश के कई राष्ट्रीय उद्यानों में पालन नही हो सका,

जनवरी 2008 में भारतीय वन्यजीव संस्थान देहरादून (W.W.I.) ने दो साल पूर्व की गई गणना की रपट दे दी जिसमें देशभर में तीन हजार के बजाय कुल 1411 बाघ होना बताया गया, साथ ही बाघो के संरक्षण पर तत्काल गम्भीरता से प्रयास किये जाने की बात कही।

इस रपट मे बान्धवगढ़ में 47 बाघ होना बताया गया। कान्हा नेशनल पार्क को छोड़कर अन्य किसी भी पार्क में वफर जोन तैयार नही हो सका है।

❁ ❁ ❁ ❁

बान्धवगढ़ नेशलन पार्क के आसपास के इलाके मे 24 दिसम्बर 07 को दो नर तेन्दुओ व एक शेर की खाल व जनवरी माह में एक तुन्दुए की खाल वन अपराधियों से बरामद की गई थी। इसी तरह पार्क के ताला प्रशिक्षण केन्द्र से शेर की 250 नग हड्डिया गायब है।

कान्हा अभयारण्य के बफर जोन में भी जनवरी माह में एक शेर मृत पाया गया था, यहा शेर का शिकार जाल लगाकर किया गया था। कान्हा पार्क के दूसरे हिस्से बालाघाट जिले के कई गांवो से 29 फरवरी 08 को दुर्लभ प्रजाति के पैथर की एक, दो सांभर, दो चीतल की खाले तथा 60 किलोग्राम सींग पुलिस ने शिकारियो से बरामद की थी..... इस तरह स्पष्ट है कि वन्य प्राणियों का शिकार बड़े पैमाने पर हो रहा है।

देखे- नई दुनिया (दैनिक) मार्च 14 व 15 सन् 2008

वनों के विनाश से उत्पन्न पर्यावरण की गड़बड़ी से अनेक वन्य प्राणी-स्तनपायी, जलचर, थलचर, गगनचारी पक्षियां , कीट-पतंगे अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं : वनो के विनाश से सर्वाधिक दुष्प्रभाव जंगल के राजा 'शेर' पर पड़ा है, यह प्रादेशिक प्राणी (Territorial) है, वनो के घटते क्षेत्र और मनुष्यों के जंगल में अत्यधिक हस्तक्षेप से शेरो की संख्या में भारी कमी आई है। शेर हमारी खाद्य श्रंखला में सबसे ऊपर है। शेरो की घटती संख्या तथा उसके विनाश से अकल्पनीय क्षति पर्यावरण तथा मानवजाति को हो सकती है। तथा वन्यप्राणियों में सन्तुलन की स्थिति बनाये रखने के लिये जंगल की सुरक्षा तथा शेरो का अत्यधिक महत्व है।

आज तो शेर हमारी अर्थव्यवस्था के लिये बहुत महत्वपूर्ण हो गये है। आज शेरो के कारण प्रतिवर्ष लोखो विदेशी पर्यटक देश में आते है जिनके कारण हजारो लोगो को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रोजगार मिला हुआ है। और अरबो रुपया विदेशो से पर्यटन के माध्यम से प्रतिवर्ष आ रहा है। आज जंगल का राजा शेर हमारी अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ करने का एक सबल साधन बन गया है। उनकी सुरक्षा तभी है जब वन सुरक्षित रहें। मनुष्य का वनो में अनावश्यक हस्तक्षेप न हो। वनो का क्षेत्र सुरक्षित एवं संरक्षित रहे क्योंकि वनो से अनेक प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष ज्ञात-अज्ञात लाभ है। वे (वन) धरती के श्रंगार तो है ही, समस्त प्राणी जगत के रक्षक भी है, पृथ्वी के परिमंडल और ओजोन के संरक्षक भी हैं।

पर्यावरण का अटूट सम्बन्ध तो समस्त प्राणियों से है, अत: जब तक पर्यावरण सन्तुलित है, स्वस्थ है, तब तक इस धरती पर जो प्राणी जहां है, वे सुरक्षित है। लेकिन उसके विगड़ने या असन्तुलित होने पर प्राणियों का जीवन खतरे में पड़ सकता है, पड़ने की बड़ी प्रबल सम्भावनायें भी है। पर्यावरण को बनाये रखने के लिये प्रकृति के सभी घटको को मौलिक स्वरूप में बनाये रखने का दायित्व मानव पर है।

पर्यावरण के बिगाड़ने में मनुष्य ही पूरी तरह दोषी है। वैज्ञानिक खोजे, मानव जीवन को सुखद एवं दीर्घ जीवी बनाने के लिये ही हुई है। लेकिन उनके विवेकशील उपयोग की आवश्यकता है। उसका उपयोग पर्यावरण को संरक्षित रखने को ध्यान में रखकर करना चाहिये, अन्धाधुन्ध उपयोग हानिकर है, 'अति सर्वत्र वर्जयेत,'

पर्यावरण, वन्य प्राणी और मानव का पारस्परिक अभिन्न सम्बन्ध है। सब एक दूसरे से सम्बद्ध है। पर्यावरण बिगड़ा तो वन्य प्राणी संकट में हो जाते है। पर्यावरण के सन्तुलित एवं स्वस्थ रहने से प्राणी जगत और वनस्पतियां सुखद स्थिति में वने रहते हैं।

प्रदूषण और वन विनाश का कारण पूरी तरह से मानव की बढ़ती जनसंख्या और उसकी अपनी आवश्यकतायें एवं महत्त्वाकाक्षायें हैं। मनुष्य के दृष्टिकोण बदल जाने से उसमें प्रकृति-पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति अभिरूचि जागृत हो जाने से उत्पन्न समस्याओं का सामयिक निदान सम्भव है, 'एकै साधै' सब सधै" वाली बात यहां सार्थक एवं प्रभावी है। सारा ठाठ मानव की बुद्धि-विवेक पर खड़ा हे, उसकी दृष्टि एवं सोच बदल जाने से सुधारात्मक हो जाने से, प्रकृति पूजक हो जाने से , धरती मॉ का सपूत बन जाने से, सारी सृष्टि बदल जायेगी। वांछित, चिर-अभिलषित लक्ष्य प्राप्त हो जायगा। धरती माता का श्रंगार-हरे-भरे घने वन तथा वन में रह रहे समस्त वन्यप्राणी जगत और उन सबको संरक्षित और प्रकृति के जीवित खिलौनो वन्य प्राणी, पक्षियों, फूल-फूलो से लहलहाते पादप-वृक्षों को सुन्दर आकर्षक बनाये रखने का दायित्व नारायण ने नर को ही सौंप दिया है क्योकि वह उसका अनुज है, अमृत पुत्र है। वह उसे चाहे, बनाये, चाहे, बिगाड़े। हां एक बात सत्य है वह यह कि यदि मानव ने धरती मॉ के श्रंगार को -

स्वस्थ पर्यावरण, वन्य प्राणी बनाये रखा, संरक्षित रखा तो धरती मॉ को आयु और यौवन में बढ़ोत्तरी हो जायगी और मानव देवत्व की कोटि में पहुंच जायगा अन्यथा सब कुछ शून्य में बदल जाने की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। प्रकृति के संसाधनों का अन्धाधुन्ध प्रयोग-दुरुपयोग पर्यावरण के साथ खिलवाड़ ही करना है। हमें जाकरुक सावधान एवं प्रकृति प्रेमी होना चाहिये, ऐसा होने में ही सबका कल्याण है।

बान्धवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान वन्य प्राणियों की दृष्टि से समृद्ध है, पर्यावरण की स्थिति भी सन्तोषजनक है लेकिन संरक्षित वनक्षेत्र में लाजों रिसोर्टो की बढ़ती संख्या से मानवीय हलचल एवं हस्तक्षेप बढ़ोत्तरी पर है जो आय की दृष्टि से अच्छा होते हुये वन्य प्राणियों की सुरक्षा एवं उनके स्वतंत्र आवागमन की दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता है।

आदिमानव
विविध गतिविधियां

बान्धवगढ़ के प्रारम्भिक निवासी (बैगा जनजाति)

शताब्दियों तक इस क्षेत्र में जन जातियों का वर्चस्व व शासन रहा, इन जातियों को वन्य जाति , वनवासी, आदिवासी तथा अदिमवासी भी कहा जाता है, अर्थ तो उसी मानव समुदाय से है जो प्रारम्भिक रहवासी या निवासी थे।

बान्धवगढ़ के आसपास पूरे क्षेत्र में आदिकाल से ईस्वी सन् की दूसरी-तीसरी शब्ताब्दी तक आदिमानव बैगा और उनके समुदाय से निकले अनेक वर्ग के लोगों की वस्ती थी और उन्ही का इस क्षेत्र में स्वामित्व था। परिवार के मुखिया से कबीला का सरदार फिर बड़े मानव समुदाय का सरदार, राजतंत्र का प्रारम्भिक रूप था, उसी का विकसित रूप राजा है, जो प्रारम्भ में सीमित भूखण्ड में निवास या भ्रमण करने वाले लोगो की रक्षा-सुरक्षा का भार लेता था और उन पर शासन करता था। इसी मूल समुदाय से कालान्तर में अनेक वर्ग यथा गोण्ड, कोल, भील, कॅवर, किरात, बालेन्दु, लोधी, नाग आदि संवर्ग विकसित हुये। जिस तरह मूल बरगद की अनेक शाखाओ से अनेक बर्रोहें निकलकर भूमि तक पहुंचकर नया तना वन जाती है और पुन: वृक्ष का रूप ग्रहण कर लेती है, इसी प्रकार मूल मानव समुदाय से अनेक वर्ग निकले जो शाखा के रूप में थे। इन शाखाओं से अनेक बर्रोह निकली जो उसी शाखा से जन्म ग्रहण कर कालान्तर में पृथक वृक्ष के रूप में विकसित हो गई। आदिकालीन मानव समुदाय से इसी तरह अनेक संवर्ग-जातियां-अपने सरदार, स्थान, मुखिया आचार्य आदि के नाम से विकसित होकर चार छ: पीढ़ी बाद मूल से कटती गई। उनका अपने कार्य, पौरुष, प्रतिभा आदि के कारण समाज में स्थान बनता गया। यह जानने योग्य बात है कि किसी समुदाय की सामाजिक स्थिति हजार पांच सौ वर्षो तक एक सी नही रही। यह बात सामान्यत: उन लोगो के सम्बन्ध में है जो शासक वर्ग की श्रेणी में रहे है। समय, परिस्थिति बदलने के साथ-साथ उनके समुदाय की सामाजिक स्थिति में अन्तर होता गया।

सभ्यता एवं सत्ता की दौड़ मे जो मानव समुदाय जितना आगे या पीछे रहा, लोगो की दृष्टि मं उसका सामाजिक सम्मान या सामाजिक स्थिति वैसी ही बनती गई। सामाजिक प्रतिष्ठा सदैव सत्ता की अनुगामी रही है। जो सत्ता मे रहे अथवा सत्ता के पीछे या उससे जुड़े रहे, उसको समाज में सम्मान मिला और लोगो की दृष्टि मे वह आदरणीय और माननीय रहा।

आदिमानव बैगा-समुदाय से ही कालक्रम से गोण्ड, कोल, कवर,बालेन्दु-

किरात, भील, लोधी, नाग आदि असंख्य वर्ग उपवर्ग निकले जो चार छः पीढ़ी बाद मूल से पृथक होकर अपनी अलग पहचान बनाते गये। जिस वर्ग ने जितनी सीमा तक प्रभुता अर्जित की, उसका समाज में उसी सीमा तक मान सम्मान स्थापित हुआ।

एक समुदाय से निकले हुये अन्य समुदायों का अनेकानेक कारणों से स्थानान्तरण और मूल स्थान से बहिर्गमन भी होता रहा। स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार उनके सामाजिक नियमों और परम्पराओं में भी अन्तर होता गया। भाषा और संस्कृति में भी क्रमशः घोल मेल के कारण अन्तर होता गया। कालान्तर में इतना अन्तर हो गया कि यह पूरी तरह से एक दूसरे से भिन्न हो गये। जिस वर्ग/जाति ने सत्ता प्राप्त कर शासक वर्ग की श्रेणी प्राप्त कर ली, वह कालान्तर में उन लोगो से पूरी तरह कट गया जो शासित थे। समाज में एक ही माता-पिता की सन्तानों में भारी अन्तर दिखता है। चार छः पीढ़ी वाद वे एक दूसरे से पूरी तरह पृथक हो जाते है। आदिमानव की स्थिति आज की स्थिति से बिल्कुल भिन्न थी। सामाजिक नियम और परम्परायें अपनी शैशवावस्था में थीं। वैवाहिक प्रथा सुदृढ़ नही हो पायी थी, घुमन्तू जीवन था। सारी बाते आज की तुलना में भ्रूणावस्था में थी।

आदिमानव का बैगा नाम सम्भवतः बहुत बाद में उसकी जीवन शैली, प्रवृत्ति, आदतो आदि के कारण पड़ा। यह नामकरण कालान्तर में उस मानव समूह और उसकी सन्ततियों का हुआ जो वन में रहना पसन्द करता रहा; वनोत्पाद से अपनी जीविका चलाता रहा, वन में पशुओ का शिकार करता रहा और वन में उत्पन्न होने वाले फल-फूल मूल (कन्द) से अपना गुजर-बसर करता रहा। इस समुदाय के लोगो ने कृषि की ओर ध्यान नही दिया। कृषि युग के बाद औद्योगिक युग आया, लेकिन यह समुदाय अन्य जातियों की तुलना में बहुत बाद में कृषि की ओर प्रवृत्त हुआ। जब जनसंख्या की वृद्धि और जन फैलाव के कारण जंगल, क्रमशः क्षीण होने लगे और इक्कीसवीं शताब्दी आते-आते विरल हो गये, अनेक मानव समुदाय तेजी से भूमि-अधिग्रहण करना प्रारम्भ किया तब बैगा समुदाय बस्ती तथा बस्ती के समीप बने अपने घरो से लगी भूमि को कौड़ियों के मूल्य बेचकर जंगल की ओर बढ़ते गये। जंगल अथवा जंगल के समीप में अपने घर बनाकर रहने लगे। आस- पास की भूमि में कोदो-कुटकी की खेती करने लगे -

जीविका हेतु कृषि मजदूर बन गये। खेती में तो शायद ही कभी कुछ मिल जाता हो। मुख्य काम जंगल जाना, जंगल से कुछ लाना, और किसानों के यहाँ मेहनत-मजदूरी करना, इसी से बैगा अपना और परिवार का पालन-पोषण करते हैं।

'बैगा' शब्द पर विचार करना आवश्यक है। यह शब्द संस्कृत भाषा के दो शब्दों यथा 'वन' +'ग' का अपभ्रंश है, 'वन' +'ग' से 'वनगा' और कालान्तर में 'बैगा' वन गया। इसका अर्थ 'वन' की ओर गमन करने वाला, 'वन मे रहने वाला' होता है। 'ग' धातु का अर्थ 'गमन करना', 'रहना' तथा वन का अर्थ 'जंगल,' 'अरण्य' होता है। 'वनग' प्राकृत-अपभ्रंश में अपना रूप -परिवर्तन करते हुये वर्तमान हिन्दी में अपना स्थान स्थापित कर लिया और 'वनगा' से 'बैगा' बन गया। यह समुदाय आदिमानव का वर्तमान संस्करण है जो आज भी अपनी अनेक प्राचीन परम्पराओं और जीवनशैली से बंधा हुआ है। यह समुदाय विकास की दौड़ में बहुत पीछे रह गया है। संसार में इतना परिवर्तन हो गया, नित हो रही वैज्ञानिक खोजों से परिवर्तन का चक्र क्रमश: तेज गति लेता जा रहा है, जीवनशैली, जीवन मूल्य तेजी से बदलते जा रहे है ; खान-पान, पहिनावा, जीविकोपार्जन के साधन, शिक्षा-दीक्षा, आवागमन, एवं संचार व्यवस्था आदि क्षेत्रों मे बड़े परिवर्तन हुये है, अकल्पनीय परिवर्तन सम्भावित है ; लेकिन बैगा समुदाय मे परिवर्तन, प्रगति, सुधार की गति अत्यन्त मन्द रही है। शासन ने इनके जीवन स्तर सुधार हेतु अनेक योजनायें कार्यान्वित की, इन योजनाओ में हजारों करोड़ रुपये स्वतंत्रता (15 अगस्त 1947) के बाद से अब तक व्यय किये, लेकिन सारा धन बरसाती पानी की तरह बह गया जो भ्रष्टाचारियों और इन योजनाओं से सम्बद्ध लोगों की जेबों और घरो में समा गया। इनके जीवनस्तर में अपेक्षित सुधार नही हुआ। सारे धन का बड़ा भाग विचौलिये तथा उनसे सम्बद्ध एजेन्सियां एवं संस्थाये डकार गयी। बैगा समुदाय आज भी विकास के सबसे नीचे पायदान में है। आज भी वह जंगल में या उसकी सीमा में झोपड़ी बनाकर जी रहे हैं।

❁ ❁ ❁ ❁
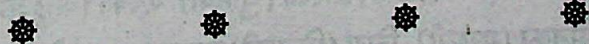
कालान्तर में जंगल में पाये जाने वाले प्राणियों और वनस्पतियों के नाम पर अनक गोत्र बने। अनेक जातियां निकली[1] विकास के सोपान पर जो जितना ऊँचे चढ़ता गया। सभ्यता की दौड़ मे जो जितना आगे बढ़ता गया, वह उसी -

अनुपात में सामाजिक प्रतिष्ठा पाता गया और नया नाम रखकर मूल समुदाय से कटता गया। अपनी पृथक स्थायी पहचान के लिये नया प्रतिष्ठाजनक नाम रखता गया। विकास के कालक्रम में मानव समूहो का उनके गठन, रंग , स्थान, शरीर की बनावट आदि के आधार पर वर्गीकरण होता गया और आज उसी आदिकालीन मानव समूह से असंख्य अलग-अलग जातियां और वर्ग समूह समय के साथ उत्पन्न हो गये।

आदिग्रन्थ बाल्मीकि रचित 'रामायण' एवं तुलसीकृत 'रामचरित मानस' में जिन शूरमाओ को वानर, रीक्ष (रीछ) व गृद्ध आदि नामों से अभिहित किया गया है, वे सब अलग-अलग मानव समूहो के नाम है। कोल, भील, कंवर, गोण्ड, बालेन्दु आदि असंख्य जातियों का उद्गम आदिमानव-समुदाय से ही है। चूंकि धरती गोल है। अपनी धुरी पर साढ़े तेईस अंश झुकी हुई है, चौबीस घंटे में अपनी कीली पर और लगभग 365 दिन में सूर्य का एक चक्कर लगाती है, जिससे रात दिन और ऋतुयें बनती है 21 मार्च और 23 सितम्बर को रात दिन बरावर होते है। पृथ्वी के मध्य से काल्पनिक विषुवत रेखा है। इसके उत्तर का भाग उत्तरी गोलार्द्ध और दक्षिण का दक्षिणी गोलार्द्ध कहलाता है। 23 सितम्बर से 22 दिसम्बर तक लगातार दिन छोटा होता जाता है, 22 दिसम्बर को दिन सबसे छोटा और रात सबसे लम्बी होती है , 25 दिसम्बर से पुन: दिन बड़ा और रात क्रमश: छोटी होने लगती है ठीक ऐसी ही स्थिति दक्षिणी गोलार्द्ध की होती है जब उत्तरी गोलार्द्ध मे ठंड होती है तो दक्षिणी गोलार्द्ध में गर्मी और जब दक्षिणी गोलार्द्ध में ठंडी होती है तो

---

1 'महाभारत' महाकाव्य के सभापर्व में अनेक जातियों का उल्लेख है जिनके नाम पक्षी और जानवरों के नाम पर रखे गये है, 'उलूक' और 'काक' जातियों के योद्धाओं का वर्णन महाभारत में आया है............युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में 'सूंकर' जाति के राजा ने सौ हाथी उपहार स्वरूप भेजे थे। 'कक' जाति के योद्धाओं ने भी युधिष्ठिर को उपहार भेजे थे, ...दक्षिण की आदिम जातियों के गोत्रों के नाम जीवों के नाम पर होते थे। तिरकी (चुहिया) एक्का (कछुआ) खोयेदा (जंगली कुत्ता) मिनका (मछली), चिरा (गिलहरी) बेसरा (बाज), हेमरण (सुपारी) आदि अनेकं जातियों का उल्लेख मिलता है। देखें .... 'हिन्दू संस्कृति में वर्ण व्यवस्था और जातियाँ' ले। सुन्दरलाल 'सागर', एम.ए., पंचम संस्करण पृ.48 व 49

उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी। यह पृथ्वी के अपनी कीली में साढ़े तेईस अंश झुकाव के कारण होता है। इस अन्तर के कारण पृथ्वी के अलग-अलग भूभागों में रहने वाले लोगो के रहन-सहन, खान-पान, रूप-रंग, पहिनावा और जीवन शैली में भिन्नता होती है। उत्तरी ध्रुव का रहवासी विषुवतरेखीय प्रदेश के निवासी से रूप-रंग आदि मे बहुत भिन्न होता है, यह अन्तर प्रकृतिजन्य है, लेकिन मूलत: मानव एक है। वह समान तत्वों से निर्मित है, अन्दर का ढांचा, एक है, खून, मज्जा, हड्डियों आदि के रंग-ढंग में कोई अन्तर नही है, लेकिन ऊपरी रूप -रंग, आकार, खान-पान, जीवन शैली में बड़ा अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

आदिमानव हजारों वर्षो तक वन में वन्य प्राणियो के मध्य रहा है। बैगा आज भी वनवासी के रूप में रह रहे हैं। ये भूमिजन है। डाक्टर रसेल ने बैगा का अर्थ 'भुइया' जाति के उन विशेष लोगो से लगाया है जो गुनाई-भुताई का काम करते है। वह बैगों को 'कोल' तथा 'मुण्डा' नस्ल मानते हैं। 'बैगा' अपने को 'गोण्डों' का ही एक अंग मानते है, इसके सम्बन्ध में एक लोककथा प्रचलित है जो इस प्रकार है- बैगा बाबा बैगा लोगो के आदि पुरुष थे। उन्ही का दूसरा नाम 'नंगा बैगा' है। नंगा बैगा की उत्पत्ति एक तूम्बे में से हुई है, नागिन ने तूम्बे को दूध पिलाया फिर छिप गयी, इसके बाद नागिन को एक लड़की मिली, उसका नाम रखा गया 'नंगा बैगिन'। नागिन ने ही नंगा बैगा और नंगा बैगिन को एक ही जगह पर पाला-पोषा। जब दोनो बड़े हो गये, उनका विवाह हो गया। इनके दो लड़के हुये, उनमें से एक जंगल काटकर अपना पेट भरने लगा। उसे बैगा कहने लगे, और दूसरा लड़का खेती करने लगा। उसको गोण्ड कहने लगे। इस प्रकार दोनो जातियों की उत्पत्ति हुई यानी दोनो का उद्गम स्त्रोत एक है, जीवन पद्धति भिन्न है।

बैगाओ ने कभी शासन नहीं किया। ये बड़े सरल, सीधे होते हैं। इनकी अभिरुचि कृषि की ओर भी नही रही है। ये भीलो की तरह चालाक भी नही रहें है। बैगा हमेशा शान्त और एकान्त जीवन व्यतीत करते रहे हैं। इसी जन्म जात गुण और जीवन शैली के कारण वे आज भी सबसे पीछे है, वे प्रकृति के अत्यधिक समीप है।

गोण्ड और बैगाओं में खान-पान का व्यवहार है, किन्तु भीलो के साथ नही है।

कहा जाता है कि गोण्डों का सबसे प्रारम्भिक रूप बैगा है जो धीरे-धीरे -

सभ्य होते गये। गोण्ड शासक बने। भारत में सम्भवत: 'गोण्ड' ही एक ऐसा राजवंश है जिसने भारत के एक विस्तृत भूखण्ड में सबसे लम्बे समय तक शासन किया है। माण्डला का गोण्ड राजवंश 63 पीढ़ी तक शासनारुढ़ रहा है। इस राजवंश के शासक संग्राम शाह, दलपतशाह और रानी दुर्गावती भारतीय इतिहास के चमकते सितारे हैं। इसके विपरीत बैगा जाति के लोग जंगल में बसने के कारण वनों पर आधारित रहे है। इनका मुख्य धन्धा शिकार करना, पहाड़ी ढंग से खेती करना और जंगल-उत्पाद एकत्र करना रहा है।

बैगा महिलायें अपने शरीर में गुदने गुदाना पसन्द करती हैं। ये बचपन में अपने माता-पिता के यहां गुदा लेती है। ये आभूषण-प्रेमी होती है, लेकिन गरीबी के कारण मूल्यवान धातुओं के आभूषण नही बनवा पातीं। फिर भी अपनी स्थिति के अनुसार चांदी, कांसा, पीतल, तांबा, लाख के जेवर पहनती है। गले में माला पहनती है।

बैगा शिकार के बहुत शौकीन होते है। ये पक्षियों को तरह तरह से फँसाते है। जंगल के छोटे-छोटे पशुओं को अपनी सूझ-बूझ से पकड़ते है। ये चूहों का मांस बड़े चाव से खाते है। जंगलों में अधिकांश समय स्वच्छ वायु में रहने के कारण ये हृष्ट-पुष्ट रहते है। ये बहुत स्वतंत्रप्रिय होते हैं। यदि घर में खाने की व्यवस्था है तो दिन मौज-मस्ती मे गुजार देते है। घर-गृहस्थी का भार सामान्यत: महिलायें उठाती है।

बैगा धरती को अपनी माता मानते है। हमारे ऋषि-मुनियो ने भी बड़ी श्रद्धा से कृतज्ञभाव से घोष किया है- " माता भूमि: पुत्रोहम्: पृथिव्या:" यही भाव बैगों का धरती माता के प्रति है ।

बैगाओं के समकक्ष 'अगरिया' जाति है जो पत्थर को गलाकर लोहा तैयार करती है और कृषिकार्य में आने वाले उपकरण यथा हैसिया, खुरपी,कुल्हाड़ी, टंगिया आदि का निर्माण करते है। लोहा बनाने की उनकी भट्टी सम्भवत: विश्व के बड़े लौह-कारखानों का आदिमरूप है।

मद्यपान बैगाओ की सामाजिक एवं धार्मिक आवश्यकता है, महुआ की शराब इनका प्रिय पेय है। बैगाओं की देवी अपने गांव के किनारे महुआ के पेड़ के नीचे रहती है। बैगा जन्म एवं मरण तक में शराब पीते है। ये बीड़ी अपने हाथ से बनाकर पीते है। जंगलो मे बिड़ी का तेन्दूपत्ता सरलता से मिल जाता है।

बैगों के देवता दूल्हादेव व नारायणदेव है। जड़ी-बूटियों के जानकारो को

'वनों का वैद्य' कहते है। बैगा जाति के पुजारी को 'गुनिया बैगा 'कहते है जिसे बैगा समुदाय में बड़े आदर से देखा जाता है, सुख-दु:ख एवं मंगलीय कार्य इसी से करवाते है।

बैगों का जन्म से मृत्यु तक वनों से धनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण यह वन को 'वनदेवी' का दर्जा देते है। ये जंगल को मां की तरह मानते है। धरती को माँ मानते है। इसीलिये कुछ बैगा समुदाय के लोग धरती माता पर हल नही चलाते है। वे 'वेवर|[1] कृषि करते है।

वेवर काश्त का ढंग सरल है एक स्थान पसन्द कर लिया जाता है। जाड़े के दिनो में वहां की वनस्पति को कुल्हाड़ी से काट दिया जाता है। जब वह सूख जाती है और जलने लायक हो जाती है तो उसमें आग लगा दी जाती है, राख की परत जमीन में विछ जाती है, उस राख में लकड़ी की मेख से छेद करके बीज डाल दिया जाता है। वर्षा में पौधे उग आते है। वर्षा के अन्त में फसल मिल जाती है। यही 'बेवर' खेती है, । 'बेवर' खेती में साल दो साल तो सन्तोषजनक फसल मिल जाती है, फिर नया स्थान चुना जाता है। और यहा वेवर काश्त की जाती है। बैगा अपने को वन का स्वामी मानते है।

समाजशास्त्री डाक्टर एल्विन ने बैगों को अत्यन्त विशिष्ट एंव हसमुख मानव समूह के रूप में प्रस्तुत किया है। बैगा ग्राम घने जंगलों में ऊंचे स्थानो में बसे होते है, इनके मकान छोटे घास-फूस तथा खप्पर से ढके होते है। दीवाल बांस की खपच्चियों से बनी होती है जिस पर मिट्टी का प्लास्टर किया होता है।

बेवर- मध्यप्रदेश में| 'वेवर|' पद्धति से कृषि करने का कानूनी अधिकार केवल 'बैगा चक' में निवास करने वाले बैगों को मिला है। 'बैगा चक' मांडला जिले का एक भूखण्ड था, जो तहसील डिंडोरी में था। अब 'डिण्डौरी|' को जिला का दर्जा प्राप्त हो गया है! अत: 'बैगा चक' अब डिंडोरी जिले के अन्तर्गत आ गया है। इस क्षेत्र मे चार गांव बैगो के है। रुझनी सरई, धावा, (Dhawa), अजगर और सिलपुरी । आबादी लगभग दो सौ है, 'बैगा| क्षेत्र 'लगभग दस हजार एकड़ का है। इस क्षेत्र में निवास करने वाले बैगाओं को 'बेवर|' प्रथा द्वारा काश्त करना कानून में जायज है, यह क्षेत्र अत्यन्त दुर्गम और पर्वतीय है।

घर साफ- सुथरे मिट्टी (सफेद,पीली) से सजे-संवरे होते हैं।

जंगल क्षेत्र कम हो जाने के कारण गांवों में, जो मैदानी इलाके में बने होते है ये छोटे-छोटे घर बनाकर रहते है। सामान्यत: इनके घर गांव के किनारे होते है।

बैगा द्रविण समूह की अत्यन्त पिछड़ी जनजाति है। इनका श्यामवर्ण, सुगठित शरीर होता है। सामान्यत: दुबले-पतले होते है। इकहरे बदन के होते है। उलझे हुये काले बाल होते है, कंधे पर टंगिया होती है। बदन में कपड़े बहुत कम होते है। अब लंगोटी का स्थान छोटी धोती ने ले लिया है कल की चिन्ता नही रहती है। वह भविष्य की चिन्ता नही करते है, हंसी-खुशी से जीवन के कठिन दिन व्यतीत करते हैं।

बैगा अच्छे निशानेबाज भी होते है। ये धनुषवाण चलाने में अत्यन्त निपुण होते है। ये अपने धनुष वाण स्वयं बनाते है। ये अपने वाणों के फन को वनस्पति के विष के विषों से बिषैला बना लेते हैं।

मछलियों को जाल में फंसाकर या फांदा से पकड़ते है। मछली मारने के लिये ये तालाब के पानी में थूहर का दूध डाल देते है उससे मछलियां सांस लेने के लिये ऊपर आ जाती है तो पकड़ लेते है। ये मछलियों को बड़े चाव से खाते है।

जंगल और मैदानी इलाके में आदिकाल से रहने के बावजूद बैगा लगभग भूमिहीन बने होने की स्थिति में है। एक समय था जब धरती मॉ का अधिकांश भूभाग वनाच्छादित था। जंगल-उत्पाद से जीवनयापन हो जाता था। लेकिन जनसंख्या की लगातार वृद्धि ने वनो के क्षेत्र को बहुत कम कर दिया। ऐसी स्थिति में वन-उत्पाद बहुत घट गया। संरक्षित वन हो गये। ऐसी स्थिति में बैगो के सामने भुखमरी की स्थिति उत्पन्न हो गयी। वे मजदूरी के लिये विवश हो गये। काश्तकारों के हल तो चलाते है, खुद काश्तकार नही बन पाये न भूमि- स्वामी बने। इधर शासन ने भूमिहीनो को जब भूमि-आवंटन करना प्रारम्भ किया तो भूमिहीन होने के कारण इन्हे भी भूमि मिल गयी। अब ये लोग भी काश्त करने लगे है। इनकी पुरानी परम्पराओ में आंशिक बदलाव दिखने लगा है। पढ़ लिखकर कुछ युवक शासकीय सेवा में भी आ गये है, कुछ वाहनो के ड्रायवर भी बन गये है। लेकिन यह सब ऊंट के मुंह में जीरा के समान ही है। यह समाज इस भौतिक प्रगति के युग में भी अत्यन्त पिछड़ा, गरीब और आदि कालीन स्थिति में है।

बैगा समुदाय में शादी-विवाह में दहेज का चलन नही है। महिला का -

स्थान पुरुष के समान ही है। विधवा विवाह होता है। विवाह की कई पद्धतियां है। लेकिन 'चढ़ विवाह' अधिक सम्माननीय है। 'चढ़ विवाह' उसे कहते है जिसमे लड़का वर के रूप में बारात के साथ लड़की के यहां जाता है फिर वहा अग्नि के सात फेरे लगाये जाते है। लड़की विदा होकर ससुराल आती है,

यह समुदाय विकास की मुख्य धारा से कटा हुआ है। आशा है, आगामी शताब्दी तक यह समुदाय मुख्यधारा से जुड़ जायेगा।
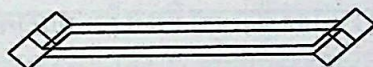
बाघेल राजवंश

गुजरात के बघेला गांव से बाघराव अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ विक्रम सम्बत् 1234 में चित्रकूट आये। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों और भाग्य ने उनका भरपूर साथ दिया। जल्दी ही वह क्षेत्र के शासक बन गये और बाघराव से व्याध्रदेव (सम्मानसूचक शब्द) कहे जाने लगे। वह सोलंकी क्षत्रिय थे। लेकिन 'बघेला' गांव से आने के कारण 'बघेलहा' से 'बाघेल' कहे जाने लगे। नाम भी 'व्याघ्रदेव' हो गया। अत: गांव व नाम के कारण वह 'बाघेल राजवंश' के आदिपुरुष व जन्मदाता बने। उनका वंशावृक्ष निम्न है:- शासनकाल विक्रम सम्बत् मे कोष्टक में है-

व्याघ्रदेव (वि.सं.1234 से 1245)

2. कर्णदेव (1245-1260) — कंधरदेव (कसौटा)

3. सोहागदेव (1260- 1275)

4. सारंगदेव (1275-1300)

5. विलासदेव (1300-1325)

6. भीमलदेव (1325-1340)

7. अनीकदेव (1340-1360)

8. बालनदेव (1360-1380)

9. दलकेश्वरदेव (1380-1390) (दल की) — 10 मलकेश्वरदेव (मल की) (1390-1400)

11. वरियारदेव (1400-1412)

12. बुल्लारदेव (1412-1460)

13. सिंहदेव

13 एवं 14 वीरमदेव (1460-1485)

↓
15 नरहरिदेव (1485-1527)

16 भैदचन्द (1527-1552) — जनकदेव
↓
17 शालिवाहन (1552-1557)
↓
18 वीरसिंह (1557-1597)

19 वीरभानु (1597-1612) — जमुनीभानु (मैहर-सोहागपुर) — होरिलदेव — नादभानु
↓
20 रामचन्द्र [1612-1648]
↓
21 वीरभद्र (1648-1654)

22 विक्रमादित्य (1674-1691) — दुर्योधन सिंह (1661-1674)

23 अमरसिंह (1691-1697) — इन्द्रसिंह — सरूपसिंह — अंगदराय

24 अनूपसिंह (1698-1732) — फतेसिंह

25 भावसिंह (1732-1749) — यशवन्त सिंह — जुझारसिंह

मुकुन्दसिंह — 26 अनिरुद्ध सिंह (1749-1751)
↓
27 अवधूतसिंह (1751-1812)
↓
28 अजीत सिंह (1812-1883)
↓
29 जयसिंह (1883-1890)
↓

30 विश्वनाथ सिंह (1890-1911) बल भद्र सिंह लछिमन सिंह

↓

31 रघुराज सिह (1911-1937)

↓

32 व्यंकटरमण सिह (1939-1975)

33 गुलाबसिंह (1975-2003) रामानुज प्रताप सिंह (जगदीश सिंह)
(रिजेन्सीकाल वि.स. 1975-1979)

↓

34 मार्तण्ड सिह (2002 से 2006)

↓

पुष्पराज सिंह

नोट:- उक्त विक्रम सम्बव् को ईस्वी सन् में परिवर्तन करने के लिये 57 को घटा दें।

दलकेश्वर (दलकी) और मलकेश्वर (मलकी) दोनों सगेभाई थे। दलकेश्वर के कोई सन्तान नही थीं। अत: उनकी मृत्यु के बाद उनके अनुज मलकेश्वर (मलकी) गद्दी पर बैठे।

13-14 **सिंहदेव-वीरमदेव-** सिंहदेव बुल्लारदेव के पुत्र होने के कारण गद्दी के उत्तराधिकारी थे, वह रामरति तिवारी को साथ लेकर प्रयाग गये, इस विश्वास के कारण कि वह जिस इच्छा-संकल्प के साथ त्रिवेणी में आत्म बलिदान कर देंगे, उनकी वह इच्छा पूरी हो जायेगी, उन्होंने इच्छा की कि उनकी सन्तान अक्षय राज करे। इस इच्छा- संकल्प के साथ उन्होने जल समाधि ले ली। रामरति तिवारी ने भी जल- समाधि ले ली। सिंहदेव के न रह जाने पर उनके पुत्र वीरमदेव को राज्याधिकार प्राप्त हुआ। उन्हे बाबा बुल्लारदेव से राज्य प्राप्त हुआ।

विक्रमादित्य-दुर्योधन सिंह- वीरभद्र के दो पुत्र थे। बड़े विक्रमादित्य छोटे दुर्योधन सिंह थे, पिता की मृत्यु के समय दोनो अल्पवयस्क थे। इनके बाबा जमुनीभानू जीवित थे। उन्होने राज्यभार संभाला। लेकिन पारिवारिक कलह और स्वार्थ -परता के कारण क्रान्ति खड़ी हो गई। मुगल सम्राट अकबर ने अपना-

प्रतिनिधि बनाकर सेना के साथ पात्रदास को भेजा। पात्रदास ने आठ माह के घेरे के बाद किले पर अधिकार कर लिया। उसने शासन अपने हाथ मे ले लिया। विक्रमादित्य को इस्माइल कुलीखान की अभिरक्षा में अकबर की दरवार में भेज दिया गया। अकबर की इच्छा से दुर्योधन सिंह को बान्धवगढ़ को शासक स्वीकार कर लिया गया। पात्रदास पांच वर्षो तक प्रतिनिधि-शासक रहा। अकबर की मृत्यु हो गई। उसका पुत्र जहांगीर दिल्ली की गद्दी पर बैठा। इधर दुर्योधन सिंह को भदावर के राजा बदन सिंह की पुत्री के साथ शादी कर लेने के कारण ठाकुरो ने उन्हें यह कहकर जातिच्युत कर दिया कि वह रखेल की लड़की है। वह भदावर चले गये। बान्धवगद्दी खाली हो गई। प्रमुख सरदारो के आग्रह पर जहांगीर ने विक्रमादित्य को बांधवगढ़ का राजा स्वीकार कर लिया। विक्रमादित्य ने छोटे भाई के बाद बान्धवगद्दी प्राप्त की। लेकिन वह बान्धवगढ़ में नहीं रहे।

वह बान्धवगढ़ छोड़कर रीवा चले गये। रीवा को अपनी राजधानी बना ली, यह घटना सन् 1617-18 की है।

----o----

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. प्राचीन भारत का इतिहास लेखक डा.भगवान सिंह वर्मा व
(प्रारम्भ से 1206 तक) डा. एस. के.मुल्लेरे, म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
संस्करण तृतीय 1997

2. राजेन्द्र संस्मृति-प्रकाशक साहित्य साधना परषिद् सोहागपुर, शहडोल,1988ई.

3. भारत का वृहत इतिहास,ले.श्री नेत्र पाण्डेय प्रकाशक स्टूडेन्ट्स
(आदिकाल से 1526 ई.तक) फ्रेन्ड्स,इलाहावाद,संस्करण-2005-06

4. भारत की ऐतिहासिक मानचित्रावली ले.डा.हरिप्रसाद धपलियाल
हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा.लि.सी.21/30
पिशाचमोचन,वाराणसी-221010

5. रीवा राज्य का इतिहास ले. गुरुरामप्यारे अग्निहोत्री प्रकाशक मध्यप्रदेश शासन
साहित्य परिषद् प्रथम संस्करण सन् 1972

6. भारतीय संस्कृतिका विकास ले.सत्यकेतु विद्यालंकार डी.लिट
श्री सरस्वती सदन,ए-1/32 सफदर जंग
एन्क्लेव, नई दिल्ली-29 द्वितीय संस्करण

7. शारीरिक मानव विज्ञान लेखक ए.आर.एन.श्रीवास्तव,
इलाहावाद विश्वविद्यालय,इला.ज्ञानदीप प्रकाशन,
राजेन्द्रनगर,पटना छात्र संस्करण 2001

8. सरलभाषा विज्ञान ले.डा.अशोक के.शाह 'प्रतीक', हिन्दी बुक
सेन्टर,नई दिल्ली-110002,प.सं.अक्टूबर 1994

9. भाषा विज्ञान ले.डा.भोलानाथ तिवारी प्रकाशक-किताब महल 22-ए,सरोजनी
नायडू मार्ग,इलाहावाद,पचासवां संस्क्रण 2007

10. गढ़ा-मण्डला के गोंड़ राजा ले.रामभरोसे अग्रवाल,प्रकाशक गौंड़ी,
(उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरुस्कृत) पब्लिक ट्रस्ट,मण्डला,द्वितीय संस्करण

11. Bandhavgarh [National park] by Hashim Tyagi

12. श्री नाभाजीकृत मूल भक्तमाल प्रकाशक श्री रामानन्द पुस्तकालय

द्वितीय संस्करण वि.सम्वत् 2061

13. महाभागवत री सेन जी महाराज चरित्र सम्पादक श्री रामकृपाल दास

प्रथम संस्करण 2007, प्रकाश महाभागवत-

श्री सेन जी महाराज उत्सव सेवा समिति, वृन्दावन

14. White Tiger Mohan and his Descendents, मूल लेखक रामसागर शास्त्री

विन्ध्य साहित्य प्रकाशन, शास्त्री भवन, अमहिया, रीवा संस्करण प्रथम.

अनेक पत्र-पत्रिकाओं एवं साक्षात्कार से प्राप्त जानकारियां एवं तथ्य.

समाप्त

1. राष्ट्रीय उद्यान में बिना प्रवेश पत्र के प्रवेश निषेध है।

2. राष्ट्रीय उद्यान में पूजा/दर्शन हेतु प्रवेश की अनुमति सूर्योदय के पश्चात से होगी।

3. पूजा/दर्शन के पश्चात प्रत्येक श्रद्धालु को सूर्यास्त के पूर्व राष्ट्रीय उद्यान की सीमा से बाहर निकलना अनिवार्य है।

4. राष्ट्रीय उद्यान के भीतर निम्न कार्य पूर्णत: प्रतिबंधित और दंडनीय हैं:-

अ- पॉलिथीन, कचरा इत्यादि फैलाना।

ब- पार्क के भीतर शोरगुल मचाना, रेडियो/टेपरिकॉर्डर/लाउड स्पीकर/हॉर्न ले जाना एवं बजाना।

स- राष्ट्रीय उद्यान के भीतर किसी भी कारण से आग जलाना तथा बीड़ी/सिगरेट इत्यादि पीना।

द- राष्ट्रीय उद्यान के भीतर किसी भी प्रकार का हथियार, विषैले पदार्थ, विस्फोटक पदार्थ आदि लेकर प्रवेश करना।

इ- राष्ट्रीय उद्यान के अन्दर से कोई भी पौधा, पत्ती, फूल, जड़ी बूटियां या अन्य कोई वानस्पतिक पदार्थ निकालना।

उक्त प्रतिबंधित कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के विरुद्ध वन्यप्राणी (संरक्षण) अधिनियम 1972 के अन्तर्गत नियमानुसार कानूनी कार्यवाही की जाएगी।

5. राष्ट्रीय उद्यान के भीतर किसी भी व्यक्ति की सुरक्षा का दायित्व उसकी व्यक्तिगत जिम्मेदारी होगी, इसके लिए शासन किसी भी तरह जिम्मेदार नहीं होगा।
6. राष्ट्रीय उद्यान के भीतर केवल निर्धारित मार्गों पर ही आवागमन की अनुमति है।
7. राष्ट्रीय उद्यान के भीतर किसी भी नदी/नाले/तालाब में स्नान करना पूर्णत: वर्जित है।

कृपया अपनी सुविधा एवं सुरक्षा तथा वन्य प्राणियों की सुरक्षा के लिये उपरोक्त निर्देशों का पालन कर जिम्मेदार नागरिक होने का परिचय दें।

उप संचालक
बांधवगढ़ टाइगर रिजर्व
उमरिया (म.प्र.)

श्रीमती पंचदेवी द्विवेदी

श्री रामसकल द्विवेदी

श्रीमती पंचदेवी द्विवेदी, श्री रामसकल द्विवेदी निवासी ताला की धर्मानुरागी भार्या थीं, वह अत्यन्त विनम्र, अनुशासन प्रिय, संघर्षशील एवं कर्मठ थीं, वह बहुत समझदार , आदर्श गृहलक्ष्मी थीं, वह परदु:खकातर, उदार, दूरदृष्टा थीं , दरवाजे पर आये हुये अतिथि को वह देवतुल्य समझती थीं, वह घर की अप्रतिम शोभा थीं, पड़ोसियों की विश्वसनीय सम्बल थीं, परिवार से सम्बन्ध रखने वालों एवं सहायकों के लिये वह ममतामयी करुणावान माता के रूप में समादृत रहीं; दिव्य गुणों से अलंकृत वह देवी दिनांक 31.5.2005 ई. को इस भौमिक संसार के पार चली गईं, उनके दिव्य गुणों की स्मृति में इस कृति का प्रकाशन श्री रामसकल द्विवेदी जी ने किया क्योंकि इस कृति के सृजन के पीछे उनके सुयोग्य पुत्रों का ही आग्रह, अनुरोध था ; अभ्यर्थना थी ।

उनके पंचतत्व में विलीन हो जाने के बाद भी उनके सद्गुणों की सुगन्धि उनके आवासीय परिसर में अब भी व्याप्त है ।

ईश्वर उन्हें सद्गति प्रदान करें ।

मातृपितृ भक्त श्री शेषाशक्तिधर द्विवेदी(ज्येष्ठ पुत्र)

छेदीलाल सिंह